हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

श्रीश्रीबाला कल्पतरु

भगवती श्रीबाला

बाल रवि जैसी दुति जगर-मगर होति,
वसन विमल लाल शोभा सरसावै है।
मोतिन को गल माल कङ्कन जड़ाऊ हाथ,
अङ्ग-अङ्ग भूषन अनूप छवि छावै है।
वर दै अभय देति विद्या सों सुभाव भरि,
अक्ष-जप साधन को मारग सुझावै है।
बड़-भागी साधक सो जाके उर माँहि सदा,
मैया की सुछवि यह छाप निज लावै है।

—'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

यह प्रति ४) रु० : वार्षिक मूल्य ५०) रु०

भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के उपासकों के लिए उपयोगी पुस्तकें

श्री शङ्कराचार्य विरचित
आनन्द लहरी
(हिन्दी टीका एवम् विस्तृत व्याख्या सहित)

'आनन्द-लहरी' भगवत्पाद श्रीमद् आद्य शंकराचार्य कृत 'सौन्दर्य-लहरी' का लघु रूप है। इस पुस्तक में वही साधना-परक सार-गर्भित हिन्दी टीका एवं व्याख्या सहित है। मूल्य ५) रु.

भुक्ति और मुक्ति-दायक सविधि श्रीवाञ्छा कल्पलता

भगवती त्रिपुर - सुन्दरी के उपासकों में 'श्रीवाञ्छा-कल्पलता' नामक मन्त्र का प्रयोग बहुत लोक-प्रिय है।

इस मन्त्र की प्रामाणिक एवं सरल साधना-विधि इस पुस्तक में दी गई है।

मूल्य ६) रु.

श्रीचक्र रहस्य

यह पुस्तक सरल हिन्दी भाषा में 'श्रीचक्र' या 'श्रीयन्त्र' से सम्बन्धित विशेष ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण है। श्री श्रीविद्या के उपासकों के लिए यह एक आवश्यक पुस्तक है। मूल्य १५) रु.

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४६] चैत्र-वैशाख, २०४७ वि० अप्रैल-मई, १९९० [संख्या १-२

१ सम्पादकीय : 'चण्डी का ४६ वाँ वर्ष 1
२ कामाख्या स्तोत्र : प्रेषक—पं० कपिलनारायण मिश्र, भोजपुर (बिहार) २
३ गुप्त सप्तशती : गुप्तावतार बाबा श्री का एक महत्त्व-पूर्ण प्रसाद ३
४ श्रीगङ्गा माता (गङ्गा-दशहरा के पुनीत अवसर पर) ६
५ विन्ध्य-क्षेत्र की पञ्च-क्रोशी परिक्रमा ११
६ 'क्या राम-चरित मानस तन्त्र है ?' और 'गीता प्रेस' का 'राम-चरित-मानस' १४
७ पाठकों के पत्र १५

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल जी की पुण्य स्मृति में : विशिष्ट लेख-माला—श्रीबाला-कल्पतरु

८ श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी के विविध ध्यान एवं स्वरूप-निरूपण १
९ श्री बाला त्रिपुर-सुन्दरी की कथा ६
१० श्री बाला त्रिपुर-सुन्दरी का अर्थ १५
११ श्री बाला की शक्ति १८
१२ श्री बाला तत्त्व २१
१३ भगवती श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी का ध्यान (हिन्दी पद्य) २२
१४ श्रीबाला त्रिपुरा मातृका २३
१५ 'त्रिपुरा' के वीजों की सरल साधना २५
१६ त्र्यक्षरी मन्त्र की साधना २६
१७ श्रीबाला त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र (हिन्दी-अर्थ-सहित) ३२-४०

स-म्पा-द-की-य

प्रस्तुत संयुक्त अङ्क से 'चण्डी' का ४६ वाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल, 'राष्ट्र-गुरु' प० पू० स्वामी जी महाराज दतिया, गुप्तावतार बाबाश्री, प० पू० माई जी, स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती आदि जैसी दिव्य महती आत्माओं के शुभाशीर्वाद के फल-स्वरूप ही यह सम्भव होता दिख रहा है कि 'शाक्त-धर्म' की एक-मात्र पत्रिका 'चण्डी' सभी बाधाओं, कठिनाइयों को पार करती हुई अपने प्रकाशन के पाँच दशक पूरे करने जा रही है।

सफलता के इस पुनीत अवसर पर हमारी जिम्मेदारियाँ पहले से बहुत अधिक बढ़ गई हैं। एक ओर उक्त महान् आत्माओं का प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन हमारे पास नहीं है, तो दूसरी ओर प्रकाशन-कार्य दिन-प्रतिदिन अत्यधिक मँहगा एवं कठिन होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में पाठक बन्धुओं के कृपा-पूर्ण सहयोग की हमें नितान्त आवश्यकता है, जिससे हम आनेवाले वर्षों में 'शाक्त-धर्म' की एक-मात्र मासिक पत्रिका 'चण्डी' को हिन्दू धार्मिक जनता के समक्ष अधिक प्रभावी रूप में प्रस्तुत कर सकें।

हमें विश्वास है कि सभी पाठक-बन्धु इस ओर अपना कृपा-पूर्ण ध्यान देंगे और व्यवस्था-सम्बन्धी त्रुटियों के लिये क्षमा करते हुए अपना सहयोग बराबर देते रहने की अनुकम्पा करेंगे। इससे हम 'चण्डी' की '**स्वर्ण जयन्ती**' के अनुरूप उपादेय साहित्य प्रस्तुत कर सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

कामाख्या स्तोत्र

—प्रेषक : पं० कपिलनारायण मिश्र, ग्राम पथार, जि० भोजपुर (बिहार)

सर्व - मन्त्राक्षर - मयीं, कुमारी-रूप-धारिणीम् ।
निर्गुणां योनि-रूपां, त्वां ज्ञान-मूर्ते ! नमाम्यहम् ।।१
सर्व-भूतान्तरात्मा च, देवानां दैवतं पराम् ।
ज्ञान-गम्यां निराकारां, कामाख्यां प्रणमाम्यहम् ।।२
निर्विकारां चिदानन्दां, निर्मलां ज्योति-रूपां च ।
विश्व-गर्भां नमो योनिं, कामाख्यां प्रणमाम्यहम् ।।३
आदि - मध्यान्त-हीनां च, गीयमाना सदा-शिवे !
कोटि-नीलाम्बरामाद्यां, कामाख्यां प्रणमाम्यहम् ।।४
सर्व-विद्या-स्वरूपां त्वां, मातृणां रूप-धारिणीम् ।
बाल-रूपां भद्र-विद्यां, कामाख्यां प्रणमाम्यहम् ।।५
भोग-दात्रीं भोग-कर्त्रीं, भोग - रतां भोग-प्रियाम् ।
ज्ञान-दात्रीं चिन्मयां त्वां, वामानन्द-प्रदायिनीम् ।।६
विश्व-कर्त्रीं विश्व-हर्त्रीं, विश्व-संसार-पालिकाम् ।
काम-रूपां काम-दात्रीं, कामाख्यायै नमो नमः ।।७
विदेहेन संस्थितायै, पूज्य - देहायै ते नमः ।
कुल-बालां परा-विद्यां, कामाख्यां प्रणमाम्यहम् ।।८
सदैक - रूप - संस्थितां, चिद्रूपायै नमो नमः ।
स्व-बिम्ब-भावेन विलास-युक्तायै नमो नमः ।।९
योग-शान्ति-प्रदायै त्वं, आत्म-तत्त्व-प्रकाशिनी ।
त्वां विहाय कथं देवि ! भवति शान्त-मानसः ।।१०
अतएव महा - देवि ! नित्यं रक्ष सनातनि !
देव-वृन्द-समायुक्तां, कामाख्यां प्रणमाम्यहम् ।।११

गुप्त सप्तशती

['गुप्त सप्तशती' श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महाराज का एक महत्त्व-पूर्ण प्रसाद है। यह अलभ्य वस्तु उनकी शिष्य-मण्डली तक ही सीमित थी। बाबाश्री की कृपा से यह 'चण्डी' पत्रिका द्वारा सर्व-साधारण के लाभ के लिए 'चण्डी' वर्ष १५, सम्वत् २०१३ वि० में प्रकाशित हुई। पाठकों की माँग पर पुनः लगभग ३५ वर्ष बाद इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

सात सौ मन्त्रों की 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ करने से साधकों का जैसा कल्याण होता है, वैसा ही कल्याणकारी इसका पाठ है। यह 'गुप्त सप्तशती' प्रचुर मन्त्र-बीजों के होने से आत्म-कल्याणेच्छु साधकों के लिए अमोघ फल-प्रद है।

इसके पाठ का क्रम इस प्रकार है—प्रारम्भ में 'कुञ्जिका-स्तोत्र', उसके बाद 'गुप्त सप्तशती', तदनन्तर 'स्तवन' का पाठ करे।—सं०]

कुञ्जिका-स्तोत्र

।। पूर्व-पीठिका ।।

।। ईश्वर उवाच ।।

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कुञ्जिका - मन्त्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्र - प्रभावेन चण्डी - जपं शुभं भवेत् ।।
न वर्मं नार्गला - स्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासं च न चार्चनम् ।।
कुञ्जिका-पाठ - मात्रेण दुर्गा - पाठ - फलं लभेत् ।
अति - गुह्य-तमं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ।।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्व-योनि-वच्च पार्वति !
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठ - मात्रेण संसिद्धिः कुञ्जिका - मन्त्रमुत्तमम् ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ श्लैं हुं क्लीं क्लौं जुं सः ज्वलयोज्ज्वल ज्वल प्रज्वल - प्रज्वल प्रबल-प्रबल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ।

इस 'कुञ्जिका-मन्त्र' का यहाँ दस बार जप करे। इसी प्रकार 'स्तव-पाठ' के अन्त में पुनः इस मन्त्र का दस बार जप कर 'कुञ्जिका स्तोत्र' का पाठ करे।

॥ कुञ्जिका स्तोत्र मूल-पाठ ॥

नमस्ते रुद्र - रूपायै, नमस्ते मधु - मर्दिनी।
नमस्ते कैटभारी च, नमस्ते महिषासनि॥

नमस्ते शुम्भ - हंत्रेति, निशुम्भासुर - घातिनी।
जाग्रतं हि महा - देवि! जप - सिद्धि कुरुष्व मे॥

ऐं-कारी सृष्टि-रूपायै, ह्रीं-कारी प्रति - पालिका।
क्लीं-कारी काल-रूपिण्यै, बीज - रूपा नमोऽस्तु ते॥

चामुण्डा चण्ड - घाती च, यैं-कारी वर - दायिनी।
विच्चे नोऽभयदा नित्यं, नमस्ते मन्त्र - रूपिणि॥

धां - धीं-धूं - धूर्जटपत्नी, वां वीं वागेश्वरी तथा।
क्रां - क्रीं - श्रीं मे शुभं कुरु, ऐं ॐ ऐं रक्ष सर्वदा॥
ॐ ॐ ॐ-कार-रूपायै, ज्रां-ज्रां ज्रम्भाल-नादिनी।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि! शां शीं शूं मे शुभं कुरु॥

ह्ं ह्ं ह्ंकार-रूपिण्यै, ज्रं ज्रं-ज्रम्भाल-नादिनी।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे! भवानि! ते नमो नमः॥

॥ मन्त्रः॥

ॐ अं कं चं टं तं पं यं शं बिन्दुराविर्भव, आविर्भव, हं सं लं क्षं मयि जाग्रय-जाग्रय, त्रोटय-त्रोटय दीप्तं कुरु-कुरु स्वाहा।

पां पीं पूं पार्वती पूर्णा, खां खीं खूं खेचरी तथा।
म्लां म्लीं म्लूं दीव्यती पूर्णा, कुञ्जिकायै नमो नमः॥
सां सीं सप्तशती-सिद्धि, कुरुष्व जप - मात्रतः॥
इदं तु कुञ्जिका-स्तोत्रं, मन्त्र - जाल ग्रहां प्रिये!
अभक्ते च न दातव्यं, गोपयेत् सर्वदा शृणु॥
कुञ्जिका - विहितं देवि! यस्तु सप्तशतीं पठेत्।
न तस्य जायते सिद्धि, अरण्ये रुदनं यथा॥

गुप्त-सप्तशती

ॐ ब्रीं - ब्रीं-ब्रीं वेणु - हस्ते, स्तुत-सुर-बटुकैर्हां गणेशस्य माता ।
स्वानन्दे नन्द - रूपे, अनहत - निरते, मुक्तिदे मुक्ति - मार्गे ॥
हंसः सोहं विशाले, वलय - गति - हसे, सिद्ध - देवी समस्ता ।
हीं-हीं-हीं सिद्ध - लोके, कच - रुचि-विपुले, वीर - भद्रे नमस्ते ॥१

ॐ ह्रीङ्कारोच्चारयन्ती, मम हरति भयं, चण्ड - मुण्डौ प्रचण्डे ।
खां-खां-खां खड्ग - पाणे, ध्रक-ध्रक ध्रकिते, उग्र - रूपे स्वरूपे ॥
हुँ - हुँ हुङ्कार - नादे, गगन-भुवि-तले, व्यापिनी व्योम - रूपे ।
हं - हं हङ्कार - नादे, सुर - गण - नमिते, चण्ड - रूपे नमस्ते ॥२

ऐं लोके कीर्तयन्ती, मम हरतु भयं, राक्षसान् हन्यमाने ।
घ्रां-घ्रां-घ्रां घोर - रूपे, घघ - घघ - घटिते, घर्घरे घोर - रावे ॥
निर्मांसे काक-जङ्घे, घसित-नख - नखा, धूम्र - नेत्रे त्रि - नेत्रे ।
हस्ताब्जे शूल-मुण्डे, कुल - कुल ककुले, सिद्ध - हस्ते नमस्ते ॥३

ॐ क्रीं-क्रीं-क्रीं ऐं कुमारी, कुह - कुह मखिले, कोकिलेनानुरागे ।
मुद्रा-संज्ञ-त्रि-रेखा, कुरु - कुरु सततं, श्री महा - मारि गुह्ये ॥
तेजाङ्गे सिद्धि - नाथे, मन-पवन - चले, नैव आज्ञा - निधाने ।
ऐङ्कारे रात्रि - मध्ये, स्वपित - पशु - जने, तत्र कान्ते नमस्ते ॥४

ॐ व्रां-व्रीं व्रूं व्रैं कवित्वे, दहन-पुर-गते रुक्मि - रूपेण चक्रे ।
त्रिः- शक्त्या, युक्त-वर्णादिक, कर - नमिते, दादिवं पूर्व - वर्णे ॥
ह्लीं-स्थाने काम-राजे, ज्वल-ज्वल ज्वलिते, कोशिनि कोश-पत्रे ।
स्वच्छन्दे कष्ट - नाशे, सुर-वर-वपुषे, गुह्य - मुण्डे नमस्ते ॥५

ॐ घ्रां घ्रीं घ्रूं घोर-तुण्डे, घघ-घघ घघघे घर्घरान्याङ्घ्रि-घोषे ।
ह्लीं क्रीं द्रूं द्रोञ्च-चक्रे, रर - रर रमिते, सर्व - ज्ञाने प्रधाने ॥
द्रीं तीर्थेषु च ज्येष्ठे, जुग - जुग जजुगे म्लीं पदे काल - मुण्डे ।
सर्वाङ्गे रक्त - धारा - मथन-कर-वरे, वज्र - दण्डे नमस्ते ॥६

ॐ क्रां क्रीं क्रूं वाम-नमिते, गगन गड-गडे गुह्य - योनि-स्वरूपे ।
वज्राङ्गे, वज्र - हस्ते, सुर-पति-वरदे, मत्त - मातङ्ग - रूढे ॥

स्वस्तेजे, शुद्ध - देहे, लल - लल ललिते, छेदिते पाश - जाले ।
कुण्डल्याकार - रूपे, वृष वृषभ - ध्वजे, ऐन्द्रि मातर्नमस्ते ।।७

ॐ हुँ-हुँ हुङ्कार - नादे, विषमवश - करे, यक्ष - वैताल - नाथे ।
सु - सिद्धचर्थे सु - सिद्धेः, ठठ - ठठ ठठठः, सर्व-भक्षे प्रचण्डे ।।
जूं सः सौं शान्ति - कर्मेऽमृत - मृत - हरे, निःसमेसं समुद्रे ।
देवि ! त्वं साधकानां, भव - भव वरदे, भद्र - काली नमस्ते ।।८

ब्रह्माणी वैष्णवी त्वं, त्वमसि बहुचरा, त्वं वराह - स्वरूपा ।
त्वं ऐन्द्री त्वं कुबेरी, त्वमसि च जननी, त्वं कुमारी महेन्द्री ।।
ऐं ह्रीं क्लींङ्कार-भूते, वितल-तल - तले, भू - तले स्वर्ग - मार्गे ।
पाताले शैल - शृङ्गे, हरि - हर - भुवने, सिद्ध-चण्डी नमस्ते ।।९

हं लं क्षं शौण्डि-रूपे, शमित भव - भये, सर्व-विघ्नान्त-विघ्ने ।
गां गीं गूं गैं षडङ्गे, गगन-गति-गते, सिद्धिदे सिद्ध - साध्ये ।।
वं क्रं मुद्रा हिमांशोर्प्रहसति - वदने, त्र्यक्षरे ह्सैं निनादे ।
हां हूं गां गीं गणेशी, गज - मुख - जननी, त्वां महेशीं नमामि ।।१०

स्तवन

या देवी खड्ग-हस्ता, सकल-जन-पदा, व्यापिनी विश्व-दुर्गा ।
श्यामाङ्गी शुक्ल-पाशाब्दि जगण-गणिता, ब्रह्म-देहार्ध - वासा ।।
ज्ञानानां साधयन्ती, तिमिर-विरहिता, ज्ञान - दिव्य - प्रबोधा ।
सा देवी, दिव्य - मूर्तिर्प्रदहतु दुरितं, मुण्ड - चण्डे प्रचण्डे ।।१

ॐ हां हीं हूं वर्म-युक्ते, शव गमन - गतिर्भीषणे भीम - वक्त्रे ।
क्रां क्रीं क्रूं क्रोध-मूर्तिविकृत-स्तन-मुखे, रौद्र - दंष्ट्रा - कराले ।।
कं - कं कंकाल - धारी भ्रमसि जगदिदं भक्षयन्ती ग्रसन्ती ।
हुंकारोच्चारयन्ती प्रदहतु दुरितं मुण्ड - चण्डे प्रचण्डे ।।२

ॐ ह्लां ह्लीं हूं रुद्र-रूपे, त्रिभुवन-नमिते, पाश - हस्ते त्रि-नेत्रे ।
रां रीं रूं रङ्ग - रंगे किले किलित रवा, शूल - हस्ते प्रचण्डे ।।
लां लीं लूं लम्ब-जिह्वे हसति कह-कहा शुद्ध घोराट्ट - हासैः ।
कंकाली काल - रात्रिः प्रदहतु दुरितं मुण्ड - चण्डे प्रचण्डे ।।३

ॐ ध्रां ध्रीं ध्रूं घोर-रूपे घघ - घघ - घटिते घर्घराराव-घोरे ।
निर्मांसे शुष्क - जङ्घे पिबति नर-वसा धूम्र-धूम्रायमाने ।।
ॐ द्रां द्रीं द्रूं द्रावयन्ती, सकल-भुवि-तले, यक्ष - गन्धर्व-नागान् ।
क्षां क्षीं क्षूं क्षोभयन्ती प्रदहतु दुरितं चण्ड - मुण्डे प्रचण्डे ।।४

ॐ भ्रां भ्रीं भ्रूं भद्र-काली, हरि-हर-नमिते, रुद्र - मूर्ते विकर्णे ।
चन्द्रादित्यौ च कर्णौ, शशि-मुकुट-शिरो वेष्ठितां केतु-मालाम् ।।
स्रक्-सर्व-चोरगेन्द्रा शशि-करण-निभा तारकाः हार - कण्ठे ।
सा देवी दिव्य - मूर्तिः, प्रदहतु दुरितं चण्ड - मुण्डे प्रचण्डे ।।५

ॐ खं-खं-खं खड्ग-हस्ते, वर-कनक-निभे सूर्य-कान्ति-स्वतेजा ।
विद्युज्ज्वालावलीनां, भव-निशित महा - कर्त्रिका दक्षिणेन ।।
वामे हस्ते कपालं, वर - विमल - सुरा - पूरितं धारयन्ती ।
सा देवी दिव्य - मूर्तिः प्रदहतु दुरितं चण्ड - मुण्डे प्रचण्डे ।।६

ॐ हुँ-हुँ फट् काल-रात्रीं पुर-सुर-मथनीं धूम्र - मारी कुमारी ।
ह्रां ह्रीं ह्रूं हन्ति दुष्टान् कलित किल-किला शब्द अट्टाट्टहासे ।।
हा-हा भूत - प्रभूते, किल-किलित - मुखा, कीलयन्ती ग्रसन्ती ।
हुंकारोच्चारयन्ती प्रदहतु दुरितं चण्ड - मुण्डे प्रचण्डे ।।७

ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं कपालीं परिजन-सहिता चण्डि चामुण्ड - नित्ये ।
रं - रं रंकार - शब्दे शशि - कर - धवले काल - कूटे दुरन्ते ।।
हुँ - हुँ हुंकार - कारि सुर-गण-नमिते, काल - कारी विकारी ।
त्र्यैलोक्यं वश्य-कारी, प्रदहतु दुरितं मुण्ड - चण्डे प्रचण्डे ।।८

वन्दे दण्ड - प्रचण्डा डमरु - डिमि-डिमा, घण्ट टंकार - नादे ।
नृत्यन्ती ताण्डवैषा थथ-थइ विभवैर्निर्मला मन्त्र - माला ।।
रूक्षौ कुक्षौ वहन्ती, खर - खरिता रवा चार्चिनि प्रेत - माला ।
उच्चैस्तैश्चाट्टहासै, हह हसित रवा, चर्म - मुण्डा प्रचण्डे ।।९
ॐ त्वं ब्राह्मी त्वं च रौद्री स च शिखि-गमना त्वं च देवी कुमारी ।
त्वं चक्री चक्र-हासा घुर-घुरित रवा, त्वं वराह - स्वरूपा ।।

रौद्रे त्वं चर्म-मुण्डा सकल - भुवि - तले संस्थिते स्वर्ग - मार्गे ।
पाताले शैल - शृङ्गे हरि - हर - नमिते देवि चण्डी नमस्ते ।।१०

रक्ष त्वं मुण्ड - धारी गिरि - गुह - विवरे निर्झरे पर्वते वा ।
संग्रामे शत्रु - मध्ये विश विषम - विषे संकटे कुत्सिते वा ।।
व्याघ्रे चौरे च सर्पेऽप्युदधि - भुवि-तले वह्नि - मध्ये च दुर्गे ।
रक्षेत् सा दिव्य - मूर्तिः प्रदहतु दुरितं मुण्ड - चण्डे प्रचण्डे ।।११

इत्येवं बीज-मन्त्रैः स्तवनमति - शिवं पातक - व्याधि - नाशम् ।
प्रत्यक्षं दिव्य - रूपं ग्रह - गण - मथनं मर्दनं शाकिनीनाम् ।।
इत्येवं वेद - वेद्यं सकल - भय - हरं मन्त्र - शक्तिश्च नित्यम् ।
मन्त्राणां स्तोत्रकं यः पठति स लभते प्रार्थितां मन्त्र - सिद्धिम् ।।१२

चं-चं-चं चन्द्र - हासा चचम चम-चमा चातुरी चित्त - केशी ।
यं-यं-यं योग - माया जननि जग-हिता योगिनी योग - रूपा ।।
डं-डं-डं डाकिनीनां डमरुक - सहिता दोल हिण्डोल डिम्भा ।
रं-रं-रं रक्त - वस्त्रा सरसिज - नयना पातु मां देवि दुर्गा ।।१३

'कौल-कल्पतरु चण्डी' मासिक [हिन्दी] के स्वामित्व तथा तत्सम्बन्धी विवरण

१—प्रकाशन का स्थान — प्रयाग
२—प्रकाशन की अवधि — मासिक
३—मुद्रक का नाम — श्री ऋतशील शर्मा
पता — परा वाणी प्रेस, प्रयाग—६
४—प्रकाशक का नाम — ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय
५—सम्पादक का नाम — श्री ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय
६—उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं। — श्री ऋतशील शर्मा

मैं, ऋतशील शर्मा, घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

—ऋतशील शर्मा (प्रकाशक)

गङ्गा दशहरा (२ जून, १९९०) के पुनीत अवसर पर—

श्री श्री गंगा माता

ददर्श पुरतो गङ्गां, द्वि - भुजां मकरासनाम् ।
कुन्देन्दु - शङ्ख - धवलां, सर्वाभरण - भूषिताम् ।।

'क्रिया-योग-सागर' में श्री गङ्गा माता का ध्यान इस प्रकार दिया है—दो हाथ-वाली, मकर के ऊपर बैठी हुई तथा कई तरह के विभूषणों से विभूषिता श्री गङ्गा माता का ध्यान करे ।

इनका मन्त्र है—**'ॐ ह्रीं श्रीं गङ्गायै स्वाहा'** । यह 'अष्टाक्षर मन्त्र' है । इस मन्त्र के जप से भोग और मोक्ष दोनों मिलते हैं । 'महा-विद्या-रूपी' मन्त्र होने से इसके १०८ बार के जप से ही प्रत्यक्ष सुफल मिलने लगता है । जप के पश्चात् साधक को प्रचलित 'गङ्गा-स्तव' का पाठ करना चाहिए । भगवती गङ्गा के कुछ स्तोत्र 'चण्डी' वर्ष ४७, अङ्क १०—'भगवती गङ्गा-यमुना-सरस्वती' पूजा-अङ्क में प्रकाशित हो चुके हैं ।

'विष्णु-यामल' में श्री गङ्गा माता का शक्ति-शाली कवच दिया है । यथा—

विनियोग—ॐ गङ्गायै नमः । ॐ अस्य श्रीगङ्गा-कवचस्य श्रीविष्णुः ऋषिः । विराट् छन्दः । श्रीगङ्गा देवता । चतुर्दश-पुरुषोद्धारणार्थ-पाठे विनियोगः ।

अर्थात्—श्री गङ्गा माता को नमस्कार है । इस श्री गङ्गा-कवच के ऋषि विष्णु, छन्द विराट् हैं और चौदह पीढ़ियों के उद्धार के निमित्त इस कवच का पाठ किया जाता है ।

उक्त 'विनियोग' के बाद ऋष्यादि-न्यास करना चाहिए । यथा—

ऋष्यादि-न्यास—श्रीविष्णु-ऋषये नमः शिरसि । विराट् - छन्दसे नमः मुखे । श्रीगङ्गा-देवतायै नमः हृदि । चतुर्दश-पुरुषोद्धारणार्थ-पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

अर्थात्—श्रीविष्णु ऋषि को शिर में नमस्कार । विराट् छन्द को मुख में नमस्कार । श्रीगङ्गा देवता को हृदय में नमस्कार । चौदह पीढ़ियों के पूर्व पुरुषों के मोक्ष हेतु पाठार्थ विनियोग को सारे शरीर में नमस्कार ।

ॐ द्रव्य-रूपा महा-भागा स्नाने च तर्पणेऽपि च ।
अभिषेके पूजने च पातु मां शुक्ल - रूपिणी ।।१
विष्णु - पाद-प्रसूताऽसि वैष्णवी - नाम-धारिणी ।
पाहि मां सर्वतो रक्षेत् गङ्गा त्रि - पथ - गामिनी ।।२
मन्दाकिनी सदा पातु देहान्ते स्वर्ग - वल्लभा ।
अलक-नन्दा च वाम-भागे पृथिव्यां या तु तिष्ठति ।।३

भोग - वती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा।
पञ्चाक्षरमिमं मन्त्रं यः पठेच्छृणुयादपि ॥४
रोगी रोगात् प्रमुच्येत् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
गर्भिणी जनयेत् पुत्रं बन्ध्या पुत्र - वती भवेत् ॥५
गङ्गा - स्मरण - मात्रेण निष्पापो जायते नरः।
यः पठेद् गृह-मध्ये तु गङ्गा - स्नान - फलं लभेत् ॥६
स्नान-काले पठेद् यस्तु शत - कोटि - फलं लभेत्।
यः पठेत् प्रयतो भक्त्या मुक्तः कोटि - कुलैः सह ॥७

अर्थात् द्रव-रूपिणी यह महा-भागा स्नान, तर्पण, अभिषेक और पूजा के समय मेरी रक्षा करें। इनकी श्वेत-वर्ण की मूर्ति है। मातः गङ्गे ! आप श्रीविष्णु के चरणों से निकली हैं। आपका नाम 'वैष्णवी' है। आप तीन रास्तों से जाती हैं। सब रास्तों पर, आप मेरी रक्षा करें। 'मन्दाकिनी' मेरी सदा रक्षा करें। 'स्वर्ग-वल्लभा' मेरी मृत्यु के बाद रक्षा करें। जो 'अलक-नन्दा' के रूप से धरातल पर हैं, वे मेरी बाँईं ओर रक्षा करें। पाताल में 'भोग-वती' और स्वर्ग में 'मन्दाकिनी' मेरी रक्षा करें।

जो व्यक्ति पञ्चाक्षर मन्त्र 'गङ्गायै नमः' का जप और ध्यान करता है, वह रोगी होने से रोग-मुक्त होता है, बद्ध होने से बन्धन-मुक्त होता है और गर्भिणी यदि इसे सुन ले, तो वह पुत्र-प्रसव करती है, वन्ध्या पुत्र-वती होती है। श्री गङ्गा माता के स्मरण-मात्र से ही मनुष्य कलुष-हीन हो जाता है। मकान के भीतर बैठकर इस स्तव या कवच का पाठ करने से गङ्गा-स्नान का सुफल मिल जाता है। नहाते समय पाठ करने से सौ-कोटि-गुणा फल-लाभ होता है। संयत होकर भक्ति के साथ इसे जो पाठ करता है, वह कोटि-कुलों के साथ मुक्ति-लाभ करता है।

मंत्रसिद्धि का उपाय

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि थोड़े में ही 'मन्त्र-साधना' की प्रायः सभी महत्त्व-पूर्ण बातों का विवेचन इसमें इस प्रकार किया गया है कि सामान्य पढ़े - लिखे लोग भी उसे भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकते हैं और 'मन्त्र-साधना' को अपना कर अपना यह लोक और परलोक बना सकते हैं।

मूल्य ३-०० रु०।

विन्ध्य-क्षेत्र की पंच-क्रोशी परिक्रमा

भगवान् शिव हरि से बोले—उत्तम 'विन्ध्य-क्षेत्र' की 'पञ्च-क्रोशी यात्रा' रूपी 'प्रदक्षिणा' का मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने मात्र से मनुष्य पापों से छूट जाता है।

'प्रदक्षिणा' प्रारम्भ करने के पूर्व-दिवस में, निष्पाप एवं आलस्य-रहित होकर, विधि-पूर्वक गङ्गा-स्नान करे। हविष्य-भोजन करे और सब प्रकार से पवित्र होकर पृथ्वी पर शयन करे।

यात्रा के पहले दिन

दूसरे दिन (यात्रा प्रारम्भ करने के दिन), प्रातः गङ्गा-स्नान कर शुद्ध मन से महा-लक्ष्मी के समीप जाए। नित्य-नैमित्तिक कर्म करके लक्ष्मी जी को पूजा करे। फिर 'पञ्च-क्रोशी यात्रा' के लिए इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे जगदम्बिके! मैं मन-कर्म-वचन से उत्पन्न होनेवाले पापों के निवारण हेतु इस क्षेत्र की प्रदक्षिणा करता हूँ।'

प्रार्थना हाथ जोड़ अञ्जली बाँध कर करे। प्रार्थना के अन्त में कहे कि—'हे शिवे! आपकी मुझ पर कृपा हो! आप आज्ञा दें, जिससे मैं विधि-पूर्वक यह यात्रा कर सकूँ।'

हे हरि! इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद देवी की एक बार 'प्रदक्षिणा' करे। फिर दण्ड की तरह पृथ्वी पर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर 'पञ्च-क्रोशी-यात्रा' रूपी प्रदक्षिणा प्रारम्भ करे।

सर्व-प्रथम सर्व-पुण्यों को देनेवाले 'गङ्गेश लिङ्ग' का पूजन करे, जो गङ्गा जी के निकट स्थित है। फिर पश्चिम दिशा में स्थित 'कालिका देवी' और 'सरस्वती जी' का पूजन करे। उत्तर दिशा में 'विन्ध्येश महादेव' एवं 'नन्दीश्वर पार्षदेश्वर' का पूजन करे। पूर्व दिशा में 'स्थितेश्वर' और 'सिद्धेश्वर' नामक शिव-लिङ्गों की पूजा करे।

इसके बाद उत्तर दिशा में स्थित 'हनुमान जी' एवं 'भैरव-देव' का पूजन करे। वहाँ पर स्थित 'शीतला देवी' की भी पूजा करे। साथ ही, आग्नेय दिशा में निकट ही स्थित सर्व शिव-लिङ्गों का पूजन करे। फिर 'नाग-कुण्ड' में स्नान अथवा आचमन कर 'नागेश महा-देव' का पूजन करे। 'पुण्यौघा' सङ्गम में स्नान-आचमन करके 'भ० वामन', 'वाम-देवेश्वर महादेव' और 'वामनेश' की भक्ति-पूर्वक पूजा करे। इसके बाद नव-नाथों द्वारा स्थापित 'नव-लिङ्गों'—१ मत्स्येन्द्र, २ गोरक्षेश महा-देव, ३ बाल-नाथेश्वर, ४ साल-नागेश्वर, ५ चिपिटेश, ६ कपटीश, ७ भैरवेश, ८ घोर-नाथेश्वर और ९ महा-नाथेश्वर की पूजा करे। इन 'नव-लिङ्गों' के पास नव-नाथों द्वारा 'कुण्ड' खुदे हैं। कलि-युग में ये 'कुण्ड' और 'लिङ्ग' गङ्गाजी में लुप्त हो जाएँगे। अतः हे मुनि-सत्तम! यात्रा के कल्याण के लिए वहाँ पर उनके लिए अक्षत छोड़ देने चाहिए। उनके नामों का भक्ति-पूर्वक उच्चारण करके आगे को चले।

आधे कोस की दूरी पर 'सङ्कटघ्न' का पूजन करे। 'गो-कर्ण-कुण्ड' में स्नान-आचमन करके 'गो-कर्णेश' की पूजा करे। उसके आगे 'धर्म-कुण्ड' है, वहाँ पर 'धर्मेश' की पूजा करे। फिर 'मरीच' और 'सनकादिकों' के खोदे हुए कुण्डों में स्नान-आचमन कर 'महा-देव' की पूजा करे। 'सप्त-ऋषियों' के कुण्ड में मज्जन करके 'शङ्कर' की और 'ब्रह्म-कुण्ड' में 'ब्रह्मेश' की पूजा करे।

'लक्ष्मी-कुण्ड' में स्नान-आचमन करके 'लक्ष्मीश' और 'पार्श्व-तोयेश्वर' का तथा 'नारायण-कुण्ड' में 'शम्भु' का पूजन करे। तब 'तारक' नाम के राक्षस ने जहाँ पर परम-तप किया है, वहाँ जाकर उसके खोदे हुए 'कुण्ड' में स्नान-आचमन करके 'तारकेश' का पूजन करे। 'तारकेश' से उत्तर गङ्गा जी के समीप जो-जो लिङ्ग हैं, उनका भी पूजन करे।

पूजन के वास्ते हे केशव ! मैं उक्त विभिन्न लिङ्गों के नामों का वर्णन करता हूँ। वहाँ भृङ्गीश्वर श्रीमान् महा-पापों के नाश करनेवाले हैं। 'चतुर्वेदेश्वर' वहाँ चारों वेद के जाननेवाले ब्रह्मा से स्थापन किए हुए हैं। 'यक्षेश्वर' यक्षों के स्थापन करे हुए हैं। वहाँ अठारह अंगुल का 'लिङ्ग' शीघ्र सिद्धि का देनेवाला है। 'सरस्वती' का स्थापन किया हुआ 'सरस्वतीश्वर' नाम का लिङ्ग है, उनका भक्ति-पूर्वक आराधन करने से मूर्खत्व का नाश हो जाता है। 'धर्म-शास्त्रेश्वर' लिङ्ग स्मृतियों से प्रतिष्ठित है, उनको पूजकर स्मृति के पढ़ने का फल मनुष्य को मिलता है।

सनातन ज्योति-स्वरूप 'शैलेश्वर महा-लिङ्ग' है, वहाँ मोक्ष का देनेवाला 'क्षीर-सागर' संज्ञा-वाला लिङ्ग है। 'मन्त्रेश्वर' वहाँ मन्त्र के जप का फल देनेवाले हैं और 'त्रिपुरेश' त्रिपुरासुर द्वारा स्थापित हैं। 'वाणेश्वर' लिङ्ग बाणासुर का पूजा हुआ है, जिससे दो भुजाओंवाला बाणासुर सहस्र-भुजावाला हो गया था। 'वैरोचनेश्वर' वहाँ हैं, 'प्रह्लादेश्वर' भी हैं और भीष्म जी के स्थापन किए हुए 'भीष्मेश्वर' हैं।

जीवों का हित करनेवाले ये सब शिव-लिङ्ग कलियुग में गङ्गा जी में प्रवेश कर जाएँगे। इनके नामों का उच्चारण कर अक्षत फेंक देवे। इनके नामों का स्मरण कर ध्यान करना चाहिए।

'तारकेश' से चार कोस दूर, हनुमान जी द्वारा स्थापित 'गदाधरेश्वर' नामक शिव-लिङ्ग है। वहाँ 'कुण्ड' में भक्ति से उत्फुल्लित चित्त द्वारा स्नान-आचमन कर पूजन करना चाहिए। फिर रात्रि में भगवती का गुण-गान करते हुए जागरण करना चाहिए। गीत-बाजे-नाच शुद्ध चित्त से करना चाहिए। इस क्षेत्र में श्रद्धा से जो कुछ किया जाता है, वह कोटि-गुणा हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

यात्रा के दूसरे दिन

दूसरे दिन प्रातः-काल शौच-स्नान आदि कर 'महा-बाहु' जी का पूजन करे। फिर सभी लिङ्गों के नामों का उच्चारण कर अक्षत फेंके तथा उनके गुणों का स्मरण करते हुए 'पञ्च-वक्त्र' के पास जाए। वहाँ से तीन कोस दूर 'क्षमागार नगर' को जाए और वहीं विधि-पूर्वक 'दुग्धेश्वर लिङ्ग' का पूजन करे। यहाँ 'पुण्योत्तमा' नदी है, जो महा-पुण्य फल की देनेवाली है। इसमें स्नान कर पितरों का तर्पण शुद्ध मन से करना चाहिए। तर्पण आदि करने के बाद यहीं दूसरे दिन का विश्राम करना चाहिए। रात्रि में जागरण करते हुए 'दुग्धेश महा-देव' के नाम का भक्ति-पूर्वक स्मरण करना चाहिए। 'पुण्यो-त्तमा नदी' में जो शुद्ध चित्त होकर श्राद्ध करते हैं, उनके पितर मन में मुदित होकर स्वर्ग को जाते हैं।

यात्रा के तीसरे दिन

तीसरे दिन प्रातः-काल शौच आदि से निवृत्त होकर, 'पुण्योत्तमा नदी' में स्नान कर 'दुग्धे-श्वर' का पूजन करे। सब देवताओं को नमस्कार कर, जगदम्बा के गुणों का स्मरण करता हुआ आगे चले। यहाँ से ढाई कोस दूर, विन्ध्याचल के ऊँचे शिखर पर 'विष्णु जी' का दर्शन करे। वहाँ पर, 'पार्श्व-देवेश' नामक सर्व कामनाओं के देनेवाले शिव जी हैं।

इसके बाद 'पार्श्व-देवेश्वर' से मात्र एक कोस दूर 'वैतरणी' नामक कुण्ड को जाए। इस 'कुण्ड' में जो मनुष्य स्नान-आचमन करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। 'वैतरणी' नामक महा-लिङ्ग का जो उपचारों सहित पूजन करता है, वह महा-घोर 'वैतरणी नदी' को नहीं देखता है। यहाँ श्राद्ध करने से, 'गया' में श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती।

'वैतरणी' के निकट 'पातकहा महा-देव जी' हैं। पृथ्वी के सभी शिव-लिङ्गों से यह शिव-लिङ्ग श्रेष्ठ है। यहाँ से, सवा कोस पर 'सप्त-सागर' नामक कुण्ड है। इस कुण्ड में यात्रा करनेवाले को शुद्ध चित्त से स्नान-आचमन करना चाहिए। स्नान करने से सात सागरों में स्नान करने का फल मिलता है। यहीं पर 'सप्त-सागर' नामक लिङ्ग भी है, उसका भी पूजन करना चाहिए।

'सप्त-सागर' के निकट पाण्डवों द्वारा स्थापित लिङ्ग हैं, जिनका पूजन करने से मनुष्य पापों से रहित होता है। वहाँ से तीस धनुष की दूरी पर 'मणि-भद्र-पुर' है, जहाँ 'मणि-भद्रेश्वर' और 'अमृतेश' नामक लिङ्ग की पूजा करनी चाहिए। यहीं 'कर्णावती' नदी सब पापों की नाशक है। यहाँ पर विश्राम करके सब देवताओं का स्मरण करना चाहिए। शुद्ध मन से रात्रि में भगवान् विष्णु और 'वीर-भद्रेश्वर' का स्मरण करते हुए जागरण करना चाहिए।

यात्रा के चौथे दिन

चौथे दिन 'सिद्धेश्वर' की पूजा कर, आधे कोस पर स्थित हनुमान जी की पूजा करे। फिर कर्णावती के सङ्गम पर 'सङ्गमेश' की पूजा करे। यहाँ से आधे कोस पर 'अष्ट-भुजा' देवी हैं। 'भैरव कुण्ड' और 'सीता कुण्ड' में स्नान कर भगवती का पूजन कर रात्रि में वहीं महा-पूजन करे।

अन्तिम पाँचवें दिन

प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त हो श्री जगदम्बा का पूजन कर प्रार्थना करे—

"हे भगवति ! आपके प्रताप से मैंने विन्ध्य-क्षेत्र की यथा-शक्ति प्रदक्षिणा की है। हे शिवे ! आपकी कृपा से मेरे सभी पाप नष्ट हो जायँ और अब मेरी मति पाप में न जाय। सदा मेरी बुद्धि धर्म में ही रहे।"

इस प्रकार 'विन्ध्य-क्षेत्र' की 'पञ्च-क्रोशी यात्रा' पूर्ण कर घर वापस आए और 'कुमारी-बटुक-ब्राह्मण'-भोजन कराकर कृतार्थ हो।

भगवती श्री दुर्गा की आरती

रचयिता : गुप्तावतार बाबाश्री

बाबा जी की यह रचना यद्यपि देखने में लघु है, तथापि भाव-धारा इसकी उग्र प्रवाह-पूर्ण एवं व्यापक है। इसमें जो भी व्यक्ति डुबकी लगायेगा, उसका हृदय निस्सन्देह परमानन्द की उपलब्धि करेगा।

मूल्य २-०० रु०

क्या रामचरित-मानस तन्त्र है ?

और

गीता प्रेस का श्री 'रामचरितमानस'

लगभग ५० वर्ष पूर्व दाता भवनगढ़ (राजस्थान) के धर्म-प्राण नरेश श्रीभवानी सिंह महाराणा की प्रेरणा से उनके सचिव श्री चौबे जी द्वारा प्रेषित '**क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है ?**' शीर्षक लेख-माला 'चण्डी' में 'सरस्वती'-सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल की देख-रेख में प्रकाशित हुई थी। बाद में उक्त नरेश के दिवङ्गत होने पर उनकी पुण्य स्मृति में 'चण्डी' का एक '**श्रद्धाञ्जलि - विशेषाङ्क**' प्रकाशित हुआ था। उसमें उक्त लेख-माला पुनः सम्पूर्णतः छापी गई थी। '**कौल-कल्पतरु चण्डी**' के प्रकाशन के ४८ वें वर्ष (अप्रैल, ८६ से मार्च, ६०) के तीसरे विशेषाङ्क के रूप में वही लेख - माला पुस्तक-रूप (मूल्य ३० रु०) में २६ दिसम्बर, १६८६ को प्रकाशित हुई है।

'**क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है**' पुस्तक को प्रकाशित करते समय हमारा ध्यान 'गीता प्रेस' के 'श्रीराम-चरित-मानस' (सचित्र, सटीक, मोटा टाइप) ग्रन्थ के प्रति आकृष्ट हुआ। इस ग्रन्थ का पहला संस्करण सं० १६६६ में प्रकाशित हुआ था किन्तु आज सं० २०४४ का उसका जो संस्करण प्रचलित है, उसमें पृष्ठ १३-१४ के लगभग सवा पृष्ठों में जो '**पारायण-विधि**' प्रकाशित है, वह शब्दशः वही है, जो प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुई थी ! उसमें संशोधन/परिवर्द्धन करने के प्रति 'गीता प्रेस' का ध्यान आज तक नहीं गया ! और न उक्त 'विधि' के अनुसार पारायण करनेवाले किन्हीं महानुभाव का !! इससे स्पष्ट है कि हम 'आध्यात्मिक साधना' के प्रति कितने उदासीन रहे हैं।

'श्रीराम-चरित-मानस' में जो 'पारायण-विधि' दी गई है, उसे देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उसे 'तान्त्रिक पद्धति' के ही अनुकरण पर बनाया गया है किन्तु टीकाकार श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का निवेदन तो लगभग दो पृष्ठों में, विषय-सूची पाँच पृष्ठों में, गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी दो पृष्ठों में, 'श्रीरामशलाका प्रश्नावली' लगभग पौने दो पृष्ठों में और ग्रन्थ के अन्त में दो पृष्ठों में विज्ञापन छापा गया है, जबकि '**पारायण-विधि**' के लिए मात्र सवा पृष्ठ ही दिए गए हैं ! विधि में जो संस्कृत पद्य दिए गए हैं, उनके अर्थ हिन्दी में नहीं दिए हैं और शब्दों की शुद्धता के प्रति समुचित ध्यान भी नहीं दिया गया है। क्या 'विधि' की ऐसी उपेक्षा होनी चाहिए ?

प्रकाशित '**पारायण-विधि**' के प्रारम्भ में लिखा है—

'**··· पाठारम्भ के पूर्व श्री तुलसीदास जी, श्रीवाल्मीकि जी, श्रीशिव जी तथा श्री हनुमान जी का आवाहन-पूजन करने के पश्चात्** ···'

यहाँ विचारणीय है कि प्रत्येक आध्यात्मिक अनुष्ठान के पूर्व कलश-स्थापन, श्रीगणेश, नव-ग्रह, मातृका-पूजनादि आवश्यक होते हैं। सङ्कल्प तो अनिवार्य ही है किन्तु गीता प्रेस के 'श्रीरामचरितमानस' ग्रन्थ के लिए '**पारायण-विधि**' लिखनेवाले महानुभाव ने इनमें से किसी का उल्लेख तक नहीं किया है। बस, '**अथ आवाहन-मन्त्रः**' से प्रारम्भ हो गए हैं !

'आवाहन' सर्व-प्रथम क्रमशः तुलसीदास, वाल्मीकि, गौरी-पति, सपत्नीक लक्ष्मण, सपत्नीक शत्रुघ्न, सपत्नीक भरत और हनुमान का किया गया है किन्तु इस 'क्रम' का कोई प्रामाणिक आधार नहीं बताया गया है, केवल यह निर्देश किया गया है कि—

अथ प्रधान-पूजा च कर्तव्या विधि - पूर्वकम् । पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तु ध्यानं कुर्यात् परस्य च ।।

अर्थात् विधि-पूर्वक 'प्रधान-पूजा' करे और पुष्पाञ्जलि लेकर 'पर' का ध्यान करना चाहिए।

इस निर्देश को भी स्पष्ट नहीं किया है कि 'प्रधान-पूजा' से क्या आशय है ? 'पर' से किसका तात्पर्य है ? हाँ, इस निर्देश के तुरन्त बाद श्री सीता जी के साथ राघव का ध्यान - पूर्वक आवाहन करने हेतु छः पंक्तियोंवाला संस्कृत-पद्य अवश्य दिया है। इस आवाहनात्मक पद्य के बाद भगवान् राम को 'आसन' प्रदान करने हेतु एक श्लोक देकर 'इत्यावाहनम्' लिखकर निर्देश किया है कि—**'इति षोडशोपचारैः पूजयेत् ।'**

अर्थात् १६ उपचारों से पूजन करें किन्तु इन उपचारों का न कोई उल्लेख है, न तत्सम्बन्धी मन्त्र दिए हैं !

तदनन्तर 'श्रीरामचरितमानस-पाठ' का 'विनियोग' दिया है, किन्तु न 'ऋष्यादि-न्यास' दिया है' न तदनुरूप कर एवं अङ्ग-न्यास !!

तीन मन्त्रों से 'आचमन'-पूर्वक चौपाइयों द्वारा 'कर' तथा 'अङ्ग - न्यास' कर तुलसी - कृत एक वन्दना द्वारा ध्यान करने का निर्देश देते हुए 'पारायण-विधि' समाप्त कर दी गई है। ध्यान के बाद पूजन आवश्यक है, किन्तु उसका भी कोई उल्लेख नहीं है !

थोड़ा विचार करने से ही 'गीता प्रेस' द्वारा प्रचारित उक्त 'पारायण - विधि' की विधि - हीन अव्यावहारिकता को कोई भी समझ सकता है । क्या इस ओर 'मानस - भक्त' एवं 'गीता प्रेस' के सुधी सूत्रधार महानुभाव ध्यान देने की कृपा करेंगे ?

—एक 'मानस'-भक्त

'चण्डी' वर्ष ४८ के तीसरे विशेषाङ्क के प्रति एक सम्मान्य सदस्य के विचार :

'क्या रामचरित-मानस तन्त्र है ?'

卐 श्री जैराम भाई लक्ष्मण भाई भरद्वाज

उक्त ग्रन्थ के सम्पादक-द्वय 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल एवं श्री ऋतशील शर्मा जी ने जो परिश्रम किया है और मानस-सरोवर में डुबकी लगाकर उसके तल में से जो मोती खोज निकालकर इस ग्रन्थ में रख दिए हैं, उसके लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद ।

इस ग्रन्थ में क्या नहीं है ! कहना उचित होगा कि इसमें साधकों के लिए भण्डार खोल दिया गया है । हाँ, उक्त मोतियों को चुनने के लिए 'हंस' की दृष्टि तो चाहिए ही ।

हंस न जोइये, साचा मोती नो चारो । बगला डोले रे, कादव गारो रे ॥

शक्ति-तत्त्व से भरपूर उक्त ग्रन्थ में साधकोपयोगी पर्याप्त सामग्री है । इसमें भोग - मोक्षात्मक ब्रह्म-दर्शन के साथ दिव्य शक्ति-तत्त्व का दर्शन होता है। मुझे तो इस ग्रन्थ में अनन्त की यात्रा की अनुभूति हो रही है । जिज्ञासु लोग इससे अनन्य सार ग्रहण करके अपने मानस-क्षेत्र में स्थापित करें और फल प्राप्त करें, यह मेरा अनुरोध है ।

साधना के लिए आवश्यक कोई भी विषय इस ग्रन्थ में अछूता नहीं रहा है । खोजनेवालों को इसमें जीवनोपरान्त मिलनेवाली मुक्ति का दिग्दर्शन मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं। सम्पादक बन्धुओं ने इसमें 'तन्त्र' को वेदानुकूल प्रमाणित कर तन्त्र-मर्यादा की रक्षा की है, जिससे 'तन्त्र' में श्रद्धा रखनेवालों को बल मिलेगा और सत्य तत्त्व का ज्ञान मिलेगा । साधना/उपासना के लिए यह ग्रन्थ निस्सन्देह अवश्य सभी पाठकों को सर्वोपरि सहायक सिद्ध होगा । वर्तमाल की माँग के अनुसार यह ग्रन्थ सभी की आशाओं को पूर्ण करेगा, यह निश्चित है ।

—'चामुण्डा-ज्योतिष-केन्द्र', राणीप, अहमदाबाद–८०

पाठकों के पत्र

श्री मदन लाल सुरेन्द्रकुमार, जयपुर (राजस्थान)/७-१२-८६

"... आपका 'गुरु-साधना अङ्क' बहुत अच्छा लगा। विशेषकर 'ऊर्ध्वाम्नायोक्त सिद्ध वीरौघ गुरु कवच'। गुरु-महिमा के सम्बन्ध में निर्गुणी महात्माओं ने बहुत लिखा। सहजो बाई, चरणदास ने बड़ी महत्त्वपूर्ण आकांक्षाएँ की हैं। वास्तव में 'गुरु-साधना' के लिए बड़े शोध की आवश्यकता है।..."

श्री रङ्गनायक, कोरापूत, कटक (उड़ीसा)/२२-१-६०

"... आज तीन अनमोल रत्न (१ महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल, २ शाक्त-धर्म क्या है?, ३ क्या रामचरित-मानस तन्त्र है? चण्डी अङ्क) पाए। इन्हें प्रत्येक मातृ-भक्त को अपने हृदय में धारण करना चाहिए। मिलते ही एक ही बार में एक-के-बाद एक पढ़ गया। यह प्रशंसा नहीं है, हृदय की बात है। 'राम-चरित-मानस' तन्त्र है ही। इससे भुक्ति और मुक्ति मिलती है। आपका प्रकाशन इस दिशा में प्रशंसनीय है। 'महा-शक्ति-पीठ' विन्ध्याचल अङ्क से हमारी आन्तरिक आकांक्षा शान्त हो जाती है। माधवी माँ का परिचय भी भव्य है।..."

श्री प्रताप सिंह, एडवोकेट, लखनऊ (उ० प्र०)/३१-१-६०

"...'क्या राम - चरित - मानस तन्त्र है?' जैसा कि आपने लिखा है, वास्तव में ही अनूठा ग्रन्थ है।..."

श्री सच्चिदानन्द सिन्हा, सिंहभूम (बिहार)/१३-२-६०

"...विलम्ब के क्षणों में जब मन अधीर हो उठा था कि अचानक मां 'चण्डी' हृदय और मन की प्यास बुझाने आई। सभी प्रकाशन दुर्लभ एवं ज्ञान-प्रद हैं। आशा है, भविष्य में भी आप अपने नए प्रकाशनों से हमें लाभ पहुँचाते रहेंगे।..."

श्री कृष्णशङ्कर श्रीवास्तव, लखनऊ (उ० प्र०)/१४-२-६०

"...'चण्डी' के विन्ध्याचल एवं शाक्त-धर्म-सम्बन्धी अङ्क तथा विशेषाङ्क 'क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है?' प्राप्त हुए। ...सराहनीय सङ्कलन हेतु कोटिशः नमन। ...शाक्त-धर्म पर प्रस्तुत सामग्री स्तुत्य है। 'कौल-कल्पतरु' आचार्य-प्रवर पं० देवीदत्त जी शुक्ल का शाक्त-समाज विशेष रूप से युगों तक ऋणी रहेगा। उनके लेखों का प्रचार-प्रसार अन्य पत्रिकाओं के माध्यम से किए जाने की आवश्यकता है, जिससे 'शाक्त'-शब्द सुनकर ही मुँह बिचकानेवालों के प्रज्ञा - चक्षु खुल सकें। ...'क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है?' अपने आप में तुलसी एवं तन्त्र पर अनूठी कृति है। तुलसी पर ऐसा सघन प्रकाश आज तक सामने नहीं आया। उस गुमनाम लेखक को कोटिशः नमन, शत-शत प्रणाम।..."

श्री एम० सभारत्नम्, नई दिल्ली/१५-२-६०

"...श्री चण्डी देवी पर प्रकाशित **'श्री चण्डी पुराणम्'** के लिए आपको धन्यवाद। ...यह पुस्तक वास्तव में रोचक एवं ज्ञान-वर्द्धक है।..."

श्री धरणीधर मिश्र, कन्हाईपुर, गञ्जाम (उड़ीसा)/५-३-६०

"...विन्ध्याचल अङ्क के साथ विशेषांक पाया। सभी अङ्क बहुत उपादेय हैं। हमारी दृष्टि में प्रत्येक जिज्ञासु, चाहे शाक्त हो या कुछ और, उसे ये अङ्क अवश्य पढ़ने चाहिए। इनका मूल्य 'शाक्त-समाज' के लिए तो बहु-मूल्य ही है।......"

ॐ ह्रीं

॥ श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दर्यै नमः ॥

श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी
के
विविध ध्यान एवं स्वरूप-निरूपण

१. 'महा-काल-संहिता' (काम-कला काली-खण्ड)

समुद्यद्-रवि-बिम्बाभामरुण-क्षौम-धारिणीं, फुल्ल-राजीव-वदनां पीनोत्तुङ्ग-पयोधराम् ।
रत्न-केयूर-ताटङ्क-मुक्ता-हार-विराजितां, त्रि-नेत्रां बाल-शीतांशु-खण्ड-शोभि-ललाटिकाम् ।
पद्मोपरि समासीनां बालां देवीं चतुर्भुजां, विद्यामभीतिं वामेन दक्षे जप-वटीं वराम् ।
धारयन्तीं जगद्धात्रीं सर्वदैव हसन्मुखीं, सञ्चिन्त्य न्यसनं कुर्यादप्रमत्तेन चेतसा ॥

पद्म के ऊपर बैठी हुई चतुर्भुजा बाला देवी का चिन्तन कर सावधान चित्त से न्यास करना चाहिए । वे जगद्धात्री सदैव हँसमुखी हैं और अपने बाँएँ हाथों में पुस्तक एवं अभय-मुद्रा तथा दाएँ हाथों में जप-माला एवं वर-मुद्रा धारण किए हैं । उदय होते हुए सूर्य-विम्ब-जैसी उनकी आभा है, अरुण रङ्ग का रेशमी वस्त्र पहने हैं, खिले हुए कमल के समान मुख है, पीनोत्तुङ्ग पयोधर हैं, रत्न - जटित केयूर, ताटङ्क और मोतियों के हार से सुशोभिता हैं, तीन नेत्र हैं, बाल-चन्द्र के अंश द्वारा उनका ललाट शोभायमान है ।

२. 'मन्त्र-महोदधि'

[क] रक्ताम्बरां चन्द्र - कलावतंसां, समुद्यदादित्य - निभां त्रिनेत्राम् ।
विद्याऽक्ष-मालाऽभय-दान-हस्तां, ध्यायामि बालामरुणाम्बुजस्थाम् ॥

अरुण अम्बुज पर बैठी हुई त्रिनेत्रा बाला का मैं ध्यान करता हूँ, जो लाल वस्त्र पहने हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्र-कला शोभित है, उदय होते हुए आदित्य-जैसी जो प्रकाशमाना हैं और हाथों में पुस्तक, अक्ष-माला, अभय तथा दान-मुद्रा लिए हैं ।

[ख] पाशांकुशौ पुस्तकमक्ष - सूत्रं, करैर्दधाना सकलामरार्च्या ।
रक्ता त्रि-नेत्रा शशि-शेखरेयं, ध्येयाऽखिलर्द्ध्यै त्रिपुराऽत्र बाला ॥२

समस्त देवों द्वारा पूज्या त्रिपुरा बाला का यहाँ ध्यान करना चाहिए, जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, पुस्तक और अक्ष - माला लिए हैं, लाल आभावाली हैं, त्रिनेत्रा हैं और जिनके ललाट पर चन्द्रमा है ।

[ग] स्मेराननां चतुर्हस्तां पुस्तकाक्ष-वराभयां, त्रि-शक्ति-रूपिणीं बालां शरच्चन्द्र-सम-प्रभाम् ।
रक्ताम्बरां चन्द्र-मौलीं ध्यायेल्लक्ष्मी-स्वरूपिणीम् ॥

त्रि-शक्ति - रूपिणी एवं लक्ष्मी - स्वरूपा बाला का ध्यान करना चाहिए, जो शरद् - कालीन चन्द्रमा-जैसी कान्तिवाली हैं, जिनका मुख मुस्कान - युक्त है, जो चतुर्भुजा हैं और पुस्तक, अक्ष - माला, वर तथा अभय मुद्रा धारण किए हैं, रक्त-वस्त्र पहने हैं और जिनके मस्तक पर चन्द्रमा है।

[घ] अरुण-किरण-जालैरञ्जिता सावकाशा, विधृत-जप-वटीका पुस्तकाभीति-हस्ता।
इतर-कर-वराढ्या फुल्ल-कह्लार-संस्था, निवसतु हृदि बाला नित्य-कल्याण-शीला॥

मेरे हृदय में नित्य कल्याण करनेवाली बाला निवास करें, जो अरुण सूर्य के किरण - जाल से रञ्जित अवकाश से युक्त हैं, हाथों में जप-माला, पुस्तक, अभय और अन्य हाथ में वर-मुद्रा से सुशोभिता हैं तथा खिले हुए लाल कमल पर बैठी हुई हैं।

[ङ] बालां बाल-दिवाकर-द्युति-निभां पद्मासने संस्थिताम्,
पञ्च-प्रेत-मयाम्बुजासन-गतां वाग्वादिनी-रूपिणीम्।
चन्द्रार्कानल-भूषित-त्रिनयनां चन्द्रावतंसां प्रभाम्,
विद्याक्षाभय-विभ्रतीं वर-करां वन्दे परामम्बिकाम्॥

मैं परा अम्बिका बाला की वन्दना करता हूँ, जो बाल-सूर्य की प्रभा के समान वर्णवाली हैं और पद्मासन पर बैठी हुई हैं। वह पद्मासन पञ्च-प्रेतों से युक्त है और भगवती बाला सरस्वती - स्वरूपा हैं। चन्द्र, सूर्य और अग्नि जैसे तीन नेत्रों से वे विभूषिता हैं और उनके मस्तक पर चन्द्रमा की प्रभा है। अपने हाथों में वे पुस्तक, अक्ष-माला, अभय और वर-मुद्रा धारण किए हैं।

३. 'विश्वसार तन्त्र'

मुक्ता-शेखर-कुण्डलाङ्गद-मणि-ग्रैवेयक-हारोर्मिकां,
विद्योतिर्वलयादि-कङ्कण-वटी-सूत्रां स्फुरन्नूपुराम्।
माणिक्योदर-बन्धु-कञ्चुक-धरामिन्दोः कलां विभ्रतीं,
पाशं सांकुश-पुस्तकाक्ष-वलया दक्षोद्ध्वं-बाह्वादितः।
पूर्णेन्दु-प्रतिम-प्रसन्न-वदनां नेत्र-त्रयोद्भासितां,
इन्दु-क्षीर-वलक्ष-गात्र-विलसन्माल्यानुलेपाम्बराम्।
मूलाधार-समुद्गता-भगवतीं हृत्-पङ्कजे चिन्तयेत्॥

मूलाधार-चक्र से आविर्भूत भगवती बाला का ध्यान हृदय-कमल में करना चाहिए। मोतियों से उनका केश-पाश सुसज्जित है। कुण्डल, अङ्गद, मणि-जटित ग्रीवा-आभूषण और मुक्ता - हार से वे सुशोभिता हैं। चमकीले भुज-बन्द, कङ्गन, वटी - सूत्र और नूपुरों से वे प्रफुल्लिता हैं। उनकी कञ्चुकी माणिक्यों की आभा से युक्त है और चन्द्र-कला से वे शोभायमाना हैं। दाहिनी ऊपर की भुजा से वे क्रमशः पाश, अंकुश, पुस्तक और अक्ष-माला धारण किए हैं। पूर्ण-चन्द्र के समान सुन्दर प्रसन्न मुखवाली भगवती बाला तीन नेत्रों की ज्योति से प्रकाशमाना हैं। चन्द्रमा और दुग्ध के समान गौर - वर्ण शरीर माला, गन्धानुलेप और वस्त्रों से सुशोभित है।

४. 'मेरु-तन्त्र'

(क) अभयं पुस्तकं मालां वरं च दधतीं करैः । अरुणामरुणाब्जस्थां रक्त-वस्त्रां द्विजेशकाम् ।।

बाल-सूर्य-जैसी कान्तिवाली, लाल कमल पर विराजमाना, रक्त - वस्त्र - धारिणी, द्विजों की स्वामिनी भगवती श्रीबाला अपने कर-कमलों में अभय, पुस्तक, माला और वर धारण किए हुई हैं ।

(ख) पाशांकुशौ पुस्तकाक्ष-सूत्रे च दधती करैः । रक्ता त्र्यक्षा चन्द्र-भाला ध्येया सुरार्चिता ।।

रक्त-वर्णा, त्रि-नेत्रा, चन्द्र-शेखरा, देव-वन्दिता भगवती श्री बाला का ध्यान करना चाहिए, जो अपने कर-कमलों में पाश, अंकुश, पुस्तक और अक्ष-माला धारण करती हैं ।

५. 'मन्त्र-महार्णव'

(क) मातुलिङ्ग-पयोजन्म-हस्तां कनक-सन्निभां, पद्मासन-गतां बालां लक्ष्मी-प्राप्तौ विचिन्तये ।

लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए पद्मासन पर विराजमाना भगवती बाला का ध्यान करता हूँ, जो स्वर्ण के समान आभावाली हैं और हाथों में मातुलुङ्ग एवं कमल धारण किए हुई हैं ।

(ख) वर-पीयूष-कलश-पुस्तकाभीति-धारिणीं, सुधां स्रवन्तीं ज्ञानाप्तौ ब्रह्म-रन्ध्रे विचिन्तये ।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए वर, अमृत-कलश, पुस्तक और अभय धारण करनेवाली भगवती बाला को सुधा-वर्षा करती हुई ब्रह्म-रन्ध्र में ध्यान करता हूँ ।

(ग) शुक्लाम्बरां शशाङ्काभां रोग-नाशे स्मरे शिवां, अकारादि-क्षकारान्त-वर्णावयव-रूपिणीं ।

रोग-नाश के लिए श्वेत-वस्त्रा,चन्द्रमा-जैसी आभावाली, 'अ' से 'क्ष' तक के वर्णों से व्याप्त शरीरवाली भगवती बाला का स्मरण करता हूँ ।

(घ) सृणि-पाश-धरां देवीं रत्नालङ्कार-भूषितां, प्रसन्नामरुणां ध्याये वशीकरण-सिद्धये ।

वशीकरण की सिद्धि के लिए अरुण आभावाली प्रसन्न-मुखी भगवती बाला का ध्यान करता हूँ, जो रत्न-जटित अलङ्कारों से विभूषिता हैं और अंकुश तथा पाश धारण किए हुई हैं ।

६ 'जालसंवर-महा-तन्त्र'

वन्दे देवीं स्थितां बालां भास्वन्मण्डल-मध्यगाम् ।
चञ्चच्चन्द्राननां तप्तं चामीकर-सम-प्रभाम् ।।
नृत्यत् खंजन - नेत्रस्य लोकानत्यन्त-वल्लभाम् ।
मध्य-भागे लसत्काञ्ची मणि-मुक्ता-विनिर्मिताम् ।।
पद-विन्यस्त हंसालीं शुक-नासा-विराजिताम् ।
करि-शुण्डोरु-युगलां मत्त-कोकिल-निःस्वनाम् ।।
पुस्तकं जप-मालां च वरदाभय-पाणिनीम् ।
कुमारी-वेश-शोभाढ्यां कुमारी-वृन्द-मण्डिताम् ।।
विद्रुमाधर-शोभाढ्यां विद्रुमालि-नखालिकाम् ।
क्वणत्-काञ्चीं कला-नाथ-समान-रुचिराननाम् ।।

मृणाल-बाहु-लतिकां नाना-रत्न-विराजिताम् ।
कर-पद्म-समानाभां पाद-पद्म-विराजिताम् ।।
चारु-चम्पेव - वसनां देव-देव - नमस्कृताम् ।
चन्दनेन्दु-विलिप्ताङ्गीं रोम-राजी-विचित्रताम् ।।
तिल-पुष्प-समानाभां नासा-रत्न-समन्विताम् ।
गज-गण्ड-नितम्बाभां रम्भा-जङ्घा-विराजिताम् ।।
हर-विष्णु-महेन्द्राद्यैः पूज्यते पाद-पङ्कजाम् ।
कल्याणीं कमलां कालीं कुञ्चिकां कमलेश्वरीम् ।।
पावनीं परमां शक्तिं पवित्रां पावनीं शिवाम् ।
भवानीं भव-पाशघ्नीं भीतिहां भुवनेश्वरीम् ।।
भवानीं भव-शक्तिं च भेरुण्डां मुण्ड-मालिनीम् ।
जालन्धर-गिर्यंत्-सङ्गां पूर्णगिर्युनुरागिणीम् ।।

७. 'कुलार्णव-संहिता'

बालार्क-मण्डलाभासां, चतुर्बाहुं त्रि-लोचनाम् ।
पाशांकुश-वराभीतिं, धारयन्तीं शिवां भजे ।।

८. श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी माला-मन्त्रोक्त ध्यान

ऐङ्कारानन-गर्वितानल-शिखां सौः क्लीं कलां बिभ्रतीम्,
सौवर्णाम्बर-धारिणीं वर-सुधा-धौतानुरागां शिवाम् ।
वन्दे पुस्तक-पाशमंकुश-जपां स्रग्-भूषितोद्यत्कराम्,
तां बालां त्रिपुरां पद-त्रय-मयीं षट्-चक्र-सञ्चारिणीम् ।।

९. 'ब्रह्म-यामल-तन्त्र'

अक्ष - पुस्त - धरां रक्तां, वराभय - कराम्बुजाम् ।
चन्द्र-मुण्डां त्रिनेत्रां च, ध्यायेद् बालां फल-प्रदाम् ।।

१०. 'रुद्र-यामल'

सूर्य - कोटि - समानाभां, चतुर्बाहुं त्रि-लोचनाम् ।
रक्त - पद्म - समासीनां, रक्त - वस्त्राद्यलंकृताम् ।।
पुस्तकं चाक्ष - मालां च, वरं चाभयमेव च ।
दधतीं च हृदम्भोजे, श्री - बाला - त्रिपुरां भजे ।।

स्वरूप-निरूपण

तप्त-कांचन-वर्णा, अरुण-किरण-जालैरंजिता, रक्ताम्बरा

श्री श्री बाला शुद्ध सत्त्व हैं और शुद्ध सत्त्व का प्रकाश तप्त-काञ्चन-वर्ण के समान होता है। इसलिए भगवती को "तप्त-काञ्चन-वर्णा" कहा गया है। उनका वस्त्र 'माया' है, जो लाल रङ्ग का है। शुद्ध सत्त्व के प्रकाश में काल और गति (क्रिया) का समावेश ही 'माया' है। चूँकि क्रिया रजो-गुण है, इसलिए उसका रङ्ग लाल है। इसीलिए भगवती श्री श्री बाला "रक्ताम्बरा" हैं। शुद्ध सत्त्व का प्रकाश, रक्त-वर्ण 'माया' के भीतर से निकलता है, इसलिए भगवती श्री श्री बाला अरुण-किरण-जाल से आच्छादिता हैं। शुभ्र प्रकाश के साथ रक्त-वर्ण मिल जाने से, वह अरुण-वर्ण हो जाता है।

चन्द्रार्द्ध-चूड़ामणि, दिव्यालंकार-भूषिता

दिव्यालङ्कार के अन्तर्गत—अमल-हार, अजर-वस्त्र, अर्द्ध-चन्द्र, चूड़ा-मणि, कुण्डल-द्वय, करक-समूह, केयूर, विमल नूपुर, अनुत्तम ग्रैवेयक एवं अंगुलीयक रत्न आते हैं। इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

अमल-हार अर्थात् विशुद्ध प्रकाश-शक्ति

बुद्धि के सत्त्व-निर्मल होने पर प्रकाश-शक्ति अक्षुण्ण होती है। यावतीय वैषयिक 'प्रकाश' बुद्धि में ही हैं। बुद्धि के परे वैषयिक प्रकाश कहीं नहीं है। रजो-गुण के चाञ्चल्य-वश साधारण जीवों में यह प्रकाश अति क्षीण होता है। साधारण जीव की बुद्धि, किसी पदार्थ के सम्मुख होने पर, उसके अति सामान्य अंश को ही प्रकाशित करती है। जैसे, एक वृक्ष सामने दिखाई देता है, किन्तु उस वृक्ष का सामान्य अंश ही ज्ञान-गोचर हो पाता है। उसकी अतीत और अनागत अवस्था तथा आभ्यन्तरिक रस-प्रवाहादि अज्ञात ही रहता है। इसका कारण बुद्धि-'सत्त्व' की मलीनता है। 'सत्त्व-गुण' के विशुद्ध होने पर ऐसा नहीं होता—विषय का यावतीय अंश युग-पत् प्रकाशित होता है। इसी शक्ति का नाम—'अमल-हार' है। जिसमें यह शक्ति है, वह 'अमल-हार' पहने हुए है।

अजर रक्ताम्बर अर्थात अविनाशी वस्त्र

'माया' और 'अविद्या'–यही मां के हेम-वपु का आच्छादन है, जिससे वे सतत सङ्गोपन अवस्था में रहती हैं। ये दोनों ही अनादि हैं, इसलिए 'अजर' हैं। इन दोनों में 'क्रिया' या 'गति' की बहुलता है, इसलिए इनका वर्ण 'रक्त' है। इस प्रकार जिसके 'प्रकाश' द्वारा 'माया' का खेल हो रहा है, वही 'रक्ताम्बरा' हैं। विशुद्ध सत्त्व-गुण का प्रकाश होने पर इस बात का स्पष्ट बोध होता है।

अर्द्ध-चन्द्र (ललाट-भूषण)–दिव्य ज्योति

'आज्ञा-चक्र' से विशिष्ट विज्ञान-ज्योति का प्रकाश निकला करता है, जिसके प्रभाव से सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर वस्तु भी अनायास ही दिखाई देती है। इसे 'दिव्य दृष्टि' अथवा 'दूर-दर्शन-शक्ति' कहते हैं। 'योग-दर्शन' में इसे 'प्रवृत्त्यालोक' कहा गया है। यह शक्ति जिनमें है, वे ही 'अर्द्ध-चन्द्र' धारण किए हुए हैं।

चूड़ामणि (शिरोभूषण)–दिव्य ज्ञान-शक्ति

यह आभूषण दिव्य ज्ञान-शक्ति का द्योतक है। इसके द्वारा जगत् का समस्त तत्त्व स्पष्ट रूप से अनायास ही हृदयङ्गम किया जा सकता है। सामान्यतः हमें जो ज्ञान होता है, वह मिश्रित अथवा सङ्कीर्ण ज्ञान है। जिनमें दिव्य ज्ञान-शक्ति है, उनमें सङ्कीर्णता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त जगत् के प्रत्येक पदार्थ के विभिन्न विविध गुण स्पष्ट रूप से उन्हें ज्ञात हो जाते हैं। 'बुद्धि' (सत्त्व) की निर्मलता का यही लक्षण है। यह शक्ति जिनमें है, वही 'चड़ा-मणि' धारण करनेवाली हैं।

कुण्डल-द्वय (कर्ण-भूषण)–दिव्य श्रवण-शक्ति

अति दूर में जो ध्वनि होती है एवं अन्तर में जो अनाहत शब्द होता है, उन्हें स्पष्ट रूप में श्रवण करने की सामर्थ्य-शक्ति को कुण्डल-द्वय (कर्ण-भूषण) द्योतित करते हैं। यह शक्ति जिनमें है, वे ही कर्ण-भूषण धारण किए हुए हैं।

इसी शक्ति का वर्णन करते हुए, परमहंस श्री रामकृष्ण देव कहते थे कि 'उस समय मैं चींटी के शब्द को भी सुन लेता था और उस शब्द के भाव को समझ जाता था।'

करक (हस्ताभरण)—दिव्य ग्रहण-शक्ति

यह आभूषण दिव्य ग्रहण-शक्ति का द्योतक है। एक स्थान में रहते हुए, बहुत दूर स्थित छिपी हुई वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेने की जो शक्ति है, उसी का सूचक 'करक' आभरण है।

केयूर (बाहु-भूषण)–दिव्य धारण-शक्ति

यह आभूषण दिव्य धारण-शक्ति का द्योतक है। इसी शक्ति के प्रभाव से श्रीकृष्ण ने गो-वर्द्धन पर्वत को उठा लिया था।

नूपुर (पाद-भूषण)–दिव्य गति-शक्ति

इस शक्ति के प्रभाव से दुर्गम स्थान में गमन, मृत्तिका, पत्थर आदि में प्रवेश, आबद्ध स्थान से अनायास ही निर्गमन आदि अलौकिक कार्य सिद्ध होते हैं। जैसे, महात्मा तैलङ्ग स्वामी को कारागार में बन्द कर दिया गया था, किन्तु तालों में बन्द होने पर भी स्वामी जी इसी दिव्य शक्ति के प्रभाव से कारागार के बाहर आ गए थे।

ग्रैवेयक (कण्ठ-भूषण)–दिव्य कण्ठ-स्वर

जिसकी बुद्धि सत्त्व से निर्मल रहती है, उसका कण्ठ-स्वर बहुत ही मधुर और जन-प्रिय होता है। उसके द्वारा प्रताड़ना देने पर भी कोई क्रोध नहीं करता, अपितु आनन्द का ही अनुभव करता है।

अंगुलीयक–दिव्य स्पर्श-शक्ति

इस शक्ति के द्वारा सूक्ष्म छिपी हुई वस्तुओं को अनायास ही स्पर्श कर उनकी कोमलता और काठिन्य को जान सकते हैं। इसी शक्ति के प्रभाव से केवल छूकर महात्मा लोग किसी की भी 'कुण्डलिनी' जाग्रत कर देते हैं। इसी शक्ति के प्रभाव से परमहंस रामकृष्ण देव के स्पर्श-मात्र ही से भक्तों को समाधि-अवस्था प्राप्त हो जाती थी।

चतुर्भुजा–चार महा-विघ्नों से रक्षा

'भुज्'-शब्द का अर्थ है—रक्षक, कामी, भोक्ता, दुःख-भागी आदि। 'चतुर्भुजा' होने के कारण श्री बाला चार महा-विघ्नों से हम सबको रक्षा करती हैं। 'वेदान्त'-मत के अनुसार निर्विकल्प समाधि के बाधक चार महान् विघ्न हैं —१ लय, २ विक्षेप, ३ कषाय और ४ रसास्वाद। इन विघ्न-चतुष्टय से साधकों की रक्षा मां बाला करती हैं। इसीलिए चतुर्भुजा हैं। इसके अतिरिक्त वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' देती हैं, इसलिए भी वे चतुर्भुजा हैं।

पाशांकुशा–बन्धन-साधन

'अनुराग' अथवा आसक्ति के द्वारा ही भगवती जीवन को आबद्ध कर रखती हैं, इसलिए अनुराग ही 'पाश' है। 'रस'-तत्त्व से अनुराग सञ्जात है, अतः वरुण देवता का यह विशेष अस्त्र–'पाश', मां श्रीबाला के हाथ में भी है।

यहाँ यह आपत्ति हो सकती है कि केवल 'अनुराग' से जोव का बन्धन नहीं हो सकता अथवा 'द्वेष' का होना भी आवश्यक है। यह सच है। 'अनुराग' जहाँ बाधा को प्राप्त होता है, वहाँ वह 'द्वेष' के आकार ही में प्रकाशित होता है। यह 'द्वेष' ही अंकुश है। जो मूढ़ पङ्क ही में पड़े रहना चाहते हैं, उनको मां श्री बाला इन अस्त्रों द्वारा और भी कसकर बाँधती हैं।

अभय-मुद्रा–निर्भयत्व

'अभय-मुद्रा' ग्राह्यालम्बोपासक, ग्रहणालम्बोपासक एवं ग्रहीतालम्बोपासक के लिए है। मां श्रीबाला इन उपासकों को 'अभय-मुद्रा' दिखाकर यही इङ्गित करती हैं कि साधक उनके शरणापन्न होकर निर्भय हो जाए।

वर-मुद्रा–भगवती का वरण

द्वैत-भावापन्न मूढ़ साधक धन, पुत्र आदि निम्न श्रेणी के वरों की प्रार्थना करते हैं। वे श्रेष्ठ वस्तु न चाहकर तुच्छ धनादि चाहते हैं। मां श्रीबाला भी ऐसे साधकों को यह सब खिलौने के समान देकर, उनको भुला रखती हैं। 'वर-मुद्रा' का दूसरा अर्थ है कि यह मुद्रा दिखलाकर मां श्री बाला यह इङ्गित करती हैं कि—साधक दूसरा कुछ न चाह कर उनको ही वरण करे क्योंकि किसी भी प्रकार से हो, उन्हें वरण (ग्रहण) करने पर ही उपासना सफल होती है।

आसन–ईश्वरत्व के आठ ऐश्वर्य

श्रीश्रीबाला के आसन के चार पायों के रूप में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर हैं। किसी कवि ने कहा है कि ब्रह्मा मां के पैर में लगाने के लिए आलता हैं। यही बात 'श्रुति' भी कहती है—'ब्रह्मणस्तेजसा पादौ।'

ब्रह्मा–अखण्ड चैतन्य के जिस अंश से 'सृष्टि' की क्रिया प्रकाश पाती है, उसी चैतन्यांश का नाम 'ब्रह्मा' है। दूसरे शब्दों में, आत्मा जब सृष्टि-क्रिया का अभियान करती है, तब वह 'ब्रह्मा' है और उस चेतनाधिष्ठान से जो क्रिया-शक्ति प्रकाश पाती है, वही "ब्रह्माणी" है। अतः श्रीबाला ही 'ब्रह्माणी' हैं।

विष्णु—जो चैतन्यांश स्थिति-शक्ति का अभियान करता है, वही 'विष्णु' कहलाता है। 'स्थिति' का पालन करना ही उनकी शक्ति है। अतः श्रीबाला "वैष्णवी" हैं क्योंकि वे सृष्टि का पालन करती हैं।

रुद्र—अखण्ड चैतन्य के जिस अंश से 'प्रलय' का भाव प्रकाश पाता है, उसे 'रुद्र' या 'महेश्वर' कहते हैं। दूसरे शब्दों में, आत्मा जहाँ प्रलय-क्रिया का अभियान करती है, वहाँ वह 'रुद्र' नाम से अभिहित होती है और उस चेतनाधिष्ठान से जो प्रलय-स्वरूपा क्रिया-शक्ति प्रकाश पाती है, वही 'रुद्राणी' या 'माहेश्वरी' हैं। अतः श्रीबाला ही "रुद्राणी" या "माहेश्वरी" हैं।

ईश्वर—अष्ट ऐश्वर्य से युक्त। यथार्थ आत्म-ज्ञान के पथ में ईश्वरत्व का अभिमान होना एक प्रबल बाधा (अन्तराय) है। ईश्वरत्व के प्रति वैराग्य हुए बिना ममता का दूर होना असम्भव है। अनेक साधक इसी ईश्वरत्व के प्रलोभन में पड़कर पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। पूर्व-जन्मों के पुण्य के बल से, श्रीगुरुदेव की अहैतुकी कृपा से और मां की अतुलनीय दया से ही साधक इस ऐश्वर्य-सङ्कट से बच पाता है। विशिष्ट दया द्वारा मां जब स्वयं 'अष्ट-सिद्धि'-शक्तियों के रूप में साधक के सम्मुख प्रकट होती हैं, तभी वह साधक इन ऐश्वर्यों के प्रलोभन में नहीं फँसता। इसीलिए श्रीबाला ने ईश्वरत्व के आठों ऐश्वर्यों को अपने में समाहित कर रखा है, जिससे 'ईश्वर' भी उनके पर्यङ्क के एक पाया बने हुए हैं।

पर्यङ्क (पलँग) के चारों पायों के ऊपर 'सदा-शिव'-रूपी फलक 'श्रृङ्खला-शक्ति' है। काल-गति को उच्छृङ्खल न होने देना ही इस शक्ति का कार्य है। 'सदा-शिव'-रूपी दिक्-शक्ति को दबाकर न रखने से काल (गति)-शक्ति को सक्रिय करना सम्भव नहीं है। इसीलिए मां श्रीबाला शिव-रूपी 'दिक्-शक्ति' को अपने वशीभूत कर काल-शक्ति को सक्रिय कर रही हैं।

महा-शव-रूपी सदा-शिव 'परमाकाश' में रहते हैं, जहाँ माँ श्रीबाला विराजती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर —ये चारों 'चिदाकाश' में रहते हैं, जो 'परमाकाश' से नीचे हैं। इसी से 'ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर' पर्यङ्क के चार पायों के रूप में हैं और 'सदा-शिव' फलक के रूप में।

रक्त कमल—ब्रह्मत्व

'ब्रह्म-सूत्र' ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहते हैं—'जन्माद्यस्य यतः' अर्थात् जिससे सृष्टि, स्थिति और लय हो, वही ब्रह्म है। इस व्याख्या के अनुसार श्रीश्रीबाला ही "ब्रह्म" हैं।

मूल शक्ति के तीन आसन या अधिष्ठान हैं। प्रथम है इच्छा-शक्ति' या मन। 'मन' के द्योतक हैं ब्रह्मा। वस्तुतः मन ही 'प्रजा-पति' अथवा सृष्टि-कर्त्ता है। ब्रह्मा का द्योतक 'कमल' है। 'सृष्टि' के समय मां श्रीबाला कमलासना होती हैं। 'सृष्टि' की क्रिया में रजोगुण की प्रधानता स्वाभाविक है। अतः कमल रक्त-वर्ण अर्थात् लाल रङ्ग का है। 'स्थिति' के समय में 'कमल' और 'सिंह' में से कोई एक आसन होता है। 'लय' के समय मां का आसन 'शव' होता है। इसीलिए सृष्टि-स्थिति-लय के ध्यान अलग-अलग वर्णित हैं।

बहु-बहु जन्मों के पश्चात् मनुष्य ज्ञान-वान् होता है। तब अपने को—'मां' को—वह जान पाता है। अर्थात् बहु जन्म तक पुण्य अर्जन करने पर 'मां की कृपा' उपलब्ध होती है एवं उसी के फल से क्रमशः उक्त सभी तत्त्वों के हृदयङ्गम करने की योग्यता आती है।

श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी
की
कथा

'कुल-मार्तण्ड' पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

१. ब्रह्माण्ड-पुराण की कथा

'ब्रह्माण्ड-पुराण' के अन्तर्गत **'श्रीललितोपाख्यान'** के **'भण्ड-पुत्र-वध'** नामक बाइसवें अध्याय में 'श्रीबालाम्बा' (श्रीबालाम्बा त्रिपुर-सुन्दरी) के युद्ध-पराक्रम का बड़ा रोचक वर्णन है। उस वर्णन में 'श्रीबालाम्बा' को 'श्रीललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी' की पुत्री बताया गया है। यथा—

"...भण्डासुर' के बड़े पराक्रमी, बड़े बलवान्—१ चतुर्बाहु, २ चकोराक्ष, ३ चतुःशिराः, ४ वज्र-घोष, ५ ऊर्ध्व-केश, ६ महा-माय, ७ महा-हनु, ८ महा-शत्रु, ९ महा-स्कन्दी, १० सिंह-घोष, ११ सरालक, १२ अन्धक, १३ त्रिनेत्र, १४ कूपक, १५ कूप-लोचन, १६ गुहाक्ष, १७ गण्डल, १८ चण्ड-वर्मा, १९ यमान्तक, २० लड्डन (लस्सण), २१ पण्डसेन, २२ पुरुजित्, २३ पूर्व-मारक, २४ स्वर्ग-शत्रु, २५ स्वर्ग-बल, २६ दुर्ग, २७ स्वर्ग-कण्टक, २८ अति-माय, २९ बृहन्माय, ३० उप-माय—नामक तीस पुत्रों को युद्ध के लिए आते हुए देखकर 'श्रीललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी' की नव-वर्षीया कुमारी 'बालाम्बा' को बड़ा क्रोध हुआ।

क्रोध के फल-स्वरूप कुमारी 'बालाम्बा' ने महा-भट्टारिका श्रीललिता राज्ञी से सविनय निवेदन किया कि—'हे माता! मुझे भण्डासुर के तीस पुत्रों से लड़ने का बड़ा चाव हो रहा है और मेरी भुजाएँ उनके साथ लड़ने को फड़क रही हैं। अतः आशा है कि रण-क्रीड़ा के लिए अपनी पुत्री को आज्ञा प्रदान करने की कृपा करेंगी। मैं बालिका हूँ और नित्यमेव खेलने के लिए मेरा जी चाहता रहता है।'

इस पर भगवती श्री ललिताम्बा ने कहा—'हे वत्से! तू बड़ी कोमलाङ्गी है। तुम्हारी अवस्था केवल नव वर्ष की है और तू मेरी एक-मात्र पुत्री है। तेरे बिना मैं क्षण-मात्र भी साँस नहीं ले सकती। अतः युद्ध के लिए तेरा जाना मैं उचित नहीं समझती। मेरी दो शक्तियाँ 'मन्त्रिणी' और 'दण्डिनी' मन्त्री एवं सेना-पति का काम करती हैं। वे ही अन्य शक्तियों के साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध होंगी। अतः तेरे जाने की आवश्यकता नहीं है।'

निषेध करने पर भी, युद्ध के लिए 'बाला' को उत्तेजित देखकर, भगवती ने अन्ततः अपनी प्रिय पुत्री को आज्ञा प्रदान कर दी। उन्होंने बड़े स्नेह से उसका गाढ़ालिङ्गन किया। फिर अपने 'कवच' से एक 'कवच' और अपने आयुधों में से कुछ आयुध देकर, उसे युद्ध के लिए विदा किया।

जब 'भगवती बालाम्बा' रथ में बैठकर युद्ध के लिए चलीं, तो गन्धर्व और किन्नर स्त्रियाँ उन्हें प्रणाम कर उनका अभिनन्दन करने लगीं। 'मन्त्रिणी' और 'दण्डिनी' शक्तियाँ 'बालाम्बा' के दोनों ओर उनकी रक्षा के लिए चल दीं।

'कुमारी बालाम्बा' का 'भण्डासुर' के तीस पुत्रों के साथ घमासान रोमाञ्चक युद्ध होने लगा। तीस-के-तीस भाई युद्ध में ऐसा समझ रहे थे कि 'भगवती बालाम्बा' तीस रूप पृथक्-पृथक् धारण कर उन तीसों वीर पराक्रमी भण्ड-पुत्रों में से प्रत्येक से लड़ रही हैं। इस प्रकार 'कुमारी बालाम्बा' अपने हस्त-लाघव से उनके साथ युद्ध करती रहीं और युद्ध का प्रथम दिवस समाप्त हो गया।

दूसरे दिन अस्त्रों और शस्त्रों के द्वारा शत्रु-सेना को बेधती हुई 'बालाम्बा' का मुख लाल कमल के समान रक्त-वर्ण हो उठा और 'नारायणास्त्र' को छोड़कर भण्ड-पुत्रों की दो सौ अक्षौहिणी सेना को 'बालाम्बा' ने 'भस्म-सात्' कर दिया।

अपनी सेना का नाश होने पर भण्डासुर के पुत्रों को बड़ा क्रोध आया और वे सब-के-सब 'बाला भगवती' पर टूट पड़े। उनके एक साथ भिड़ने पर स्वर्ग-लोक में देवताओं और देव-शक्तियों का भीषण कोलाहल सुनाई देने लगा। उस कोलाहल के बीच में ही 'भगवती बालाम्बा' ने एक साथ तीस बाणों का सन्धान कर उन तीसों भाइयों के शिरों को अपने हस्त-लाघव से काट कर एक साथ धरा पर बिछा दिया।

इस प्रकार भण्डासुर के समस्त पुत्रों का संहार होने पर स्वर्ग-लोक से पुष्प-वर्षा होने लगी और देव-शक्तियाँ प्रसन्नता से एक दूसरी का आलिङ्गन करने लगीं। 'मन्त्रिणी' और 'दण्ड-नाथा' ने बारम्बार 'भगवती बालाम्बा' का आलिङ्गन किया और शीघ्रता से सब शक्तियों को लेकर 'भगवती ललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी' के पास पहुँचीं तथा 'कुमारी बालाम्बा' के युद्ध-कौशल का समाचार सुनाकर पुनः समराङ्गण में लौट आईं। 'भगवती ललिता' ने अपनी नव-वर्षीया 'बाला त्रिपुर-सुन्दरी' को अपनी गोद में बिठाकर बड़े स्नेह से शिर को सूँघा और फिर अपने पास बगल में बिठा लिया।

'श्रीललितोपाख्यान' का बाइसवाँ अध्याय 'श्रीबालाम्बा' द्वारा भण्ड-पुत्रों का उक्त प्रकार संहार कराकर समाप्त हो जाता है। हमने यहाँ संक्षिप्त रूप में ही श्रीबालाम्बा-विजय का वर्णन किया है। श्रद्धालु उपासक 'श्रीललितोपाख्यान' को पढ़कर विशेष बातें जान सकते हैं।

२. त्रिपुरा-रहस्य (माहात्म्य-खण्ड) की कथा

'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' के युद्ध की दूसरी कथा **'हरितायन संहिता'** अथवा **'त्रिपुरा-रहस्य'** के **'माहात्म्य-खण्ड'** के ६३ और ६४ वें अध्याय में विस्तार के साथ वर्णित की गई है। इस कथा में 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' को अष्ट-वर्षीया दर्शाया गया है, तथा इस कथा में 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' का युद्ध 'भण्डासुर' के साथ दिखाया गया है। यथा—

"...उत्तर दिशा की ओर से 'भण्डासुर' की सेना के चलने से ऊपर उठी हुई धूल के समूह को देखकर तथा युद्ध के लिए दैत्य-राज को आया हुआ जानकर, 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' उसके साथ युद्ध करने की इच्छा से रथ में बैठकर अपनी रथ-नेत्री (रथ हाँकनेवाली) से बोलीं कि—'हमारा रथ शीघ्र संग्राम के मैदान में ले चलो।'

'श्रीमाता से मुझे युद्ध की आज्ञा न मिलेगी'—ऐसा मन में जानकर 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' 'मन्त्रिणी' तथा सेना-नेत्री 'दण्ड-नाथा' से मिलकर दैत्य-सेना के सम्मुख इस प्रकार चलीं, जैसे आकाश में वायु से प्रेरित शरद्-काल का मेघ बड़ी शीघ्रता से जाता है।

'मन्त्रिणी' और 'दण्डिनी' अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' के रथ के पीछे-पीछे इस भाँति चली जा रही थीं, जैसे कि वर्षा-ऋतु में बढ़ी हुई नदी समुद्र की ओर दौड़ती है। इस प्रकार वे तीनों वाण-वर्षा करती हुईं दैत्य-राज 'भण्डासुर' की सेना में प्रविष्ट हो गईं।

विशाल हाथी पर स्थित 'कुटिलाक्ष' नामक दैत्य-सेना-पति ने 'बालाम्बा' को देखकर उन्हें रोका और मन में विचारने लगा कि—'यह अकेली कुमारी कौन है, जो इन्द्रादिकों को भी भयभीत करनेवाले हम लोगों के साथ लड़ने आ रही है ? भगवती श्रीललिता के सम्बन्ध में हमें जैसा हमारे दूतों ने बताया है, लक्षण तो सब वैसे ही हैं, केवल यह तरुणी नहीं, वरन् कन्या है। क्या, यह कुमारी श्रीललिता जी की कुमारी बाला है ?

'मुझे ऐसा विदित होता है कि यह अकेली हम सबको जीत लेगी। 'विशुक्र' अथवा 'विषङ्ग' अथवा स्वयं राजा 'भण्डासुर' और मैं, हममें से कोई भी इसके सम्मुख संग्राम में नहीं ठहर सकता, क्योंकि जिधर-जिधर यह कुमारी हमारी सेना को देखती है, उधर ही अपने वाणों की वर्षा से सारी सेना को शिथिल कर देती है। अतः मुझे इसे अवश्य रोकना चाहिए। अन्य युद्धावसर पर तो देवराज 'इन्द्र' और 'वायु-देव' की भी सामर्थ्य नहीं कि वे मेरे सामने मेरी सेना में प्रवेश कर सकें, किन्तु यदि आज यह 'बाला' सेना में प्रविष्ट हो गई, तो मैं अपना मुख किसी को भी नहीं दिखा सकता'—ऐसा निश्चय कर रोकने के अभिप्राय से वह 'श्रीबाला कुमारी' के साथ भयङ्कर युद्ध करने लगा।

इस बीच 'बालाम्बा' ने अपने एक तीक्ष्ण बाण से पर्वत-राज के समान 'कुटिलाक्ष' के 'गज-राज' को मार गिराया, जिस पर 'कुटिलाक्ष' गदा उठा कर रथ में समास्थित 'श्रीबालाम्बा' के ऊपर टूट पड़ा। उसे आते देखकर 'कुमारी बालाम्बा' ने कर्ण-पर्यन्त खींचे हुए बाण से उसकी छाती पर प्रहार किया और वह रक्त वमन करता हुआ धरा पर गिर पड़ा। तदनन्तर 'बालाम्बा भगवती' रथ-नेत्री से बोलीं कि--'हे सखि ! शीघ्र ही मेरे रथ को भण्डासुर के समक्ष ले चलो, अन्यथा पीछे से दण्डिनी अपनी पताका फहराती हुई आ रही है। वह मुझे आगे बढ़ने से अवश्य रोक देगी और भण्डासुर के सामने न जाने देगी।'

इस बात को सुनकर रथ हाँकनेवाली कहने लगी—'हे देवि ! सामने जो बड़ी ऊँची ध्वजा दिखाई दे रही है, वही भण्डासुर दैत्य-राज की पताका है और उस पताकावाले रथ में बड़े-बड़े महा-रथियों के साथ वह सुशोभित हो रहा है, किन्तु, मैं आगे बढ़ने का कोई भी मार्ग नहीं देख रही हूँ। अतः पहले अपने शस्त्रास्त्रों द्वारा आगे बढ़ने के लिए द्वार बनाओ, तो मैं उसके द्वारा भीतर प्रविष्ट हो सकूँ।'

यह सुनकर 'श्रीबालाम्बा' ने अपने हस्त-लाघव से शत्रु-सेना को अपने वाणों से तितर-बितर कर दिया और रथ-नेत्री अपने रथ को भीतर ले जाना ही चाहती थी कि इतने में 'भण्डासुर' का छोटा भाई 'विशुक्र' नामक दैत्य-राज 'बालाम्बा' के मार्ग में बाधक होकर विचारने लगा कि—'इस अष्ट-वर्षीया बालिका बालाम्बा के बल और वीर्य की सीमा नहीं है। सम्भवतः बड़े-बड़े बलवान् दैत्यों से यह 'बाला' कभी जीती न जा सकेगी। फिर भी वीर पुरुषों को युद्ध में लड़ना तो पड़ता ही है।' ऐसा निश्चय कर वह चार दाँतोंवाले 'ऐरावत'-कुलोत्पन्न शुभ्र 'दन्ताबल' हाथी के ऊपर विराजमान होकर 'बालाम्बा' के प्रति वाणों की वर्षा करने लगा।

साथ ही युद्ध को छोड़कर भागनेवाले दैत्य योद्धाओं को पुकार कर वह समझाने लगा कि—'वीर-वरों ! यदि तुम एक अबला स्त्री का अवलोकन कर डर के मारे घर चले जाओगे, तो तुम्हारी घर-वालियाँ तुम्हें क्या कहेंगी ? तुम एक अबला बालिका के साथ युद्ध करने से घबड़ा कर घर लौट रहे हो ! क्या नम्हें इस बात पर लज्जा नहीं आती ? स्त्री के द्वारा किए गए अपमान से तो मान के साथ मरना अच्छा है ।'

'विशुक्र' के इस प्रकार के वचनों को सुनकर समस्त सेना पुनः एकत्र होकर तथा 'विशुक्र' का सहारा पाकर लड़ने को उद्यत हो गई ।

'भगवती बालाम्बा' का रथ भी 'विशुक्र' के सामने हो गया और भगवती अपने रथ से वाण-वर्षा करने लगीं । फिर 'विशुक्र' ने अपनी तीक्ष्ण शर-वर्षा से शक्ति-सेना को विह्वल कर दिया और शक्तियाँ एक-एक करके इधर-उधर खिसकने लगीं । इस प्रकार शक्ति-सेना की दशा देखकर 'बालाम्बा' ने 'विशुक्र' के भाल-देश (मस्तक) पर चार भालों से प्रहार किया । 'विशुक्र' मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा, किन्तु तनिक देर के उपरान्त पुनः शीघ्र खड़ा होकर वाणों को बरसाने लगा । इस वाण-वर्षा को देखकर 'श्रीबालाम्बा' ने अपने दो शरों से 'विशुक्र' का शरासन और छत्र काट कर भूमि पर गिरा दिया तथा एक वाण से उसके वाहन 'हस्ति-राज' को 'ऐरावत' के पास स्वर्ग-लोक में भेज दिया ।

अपने वाहन गज-राज को मरा हुआ देखकर 'विशुक्र' अत्यन्त रोष के साथ बड़ी तेज तलवार लेकर 'बालाम्बा' पर झपटा, किन्तु भगवती ने अपने एक तीक्ष्ण वाण से उसकी तलवार के दो खण्ड कर दिए और साथ ही तीन वाण उसके शिर पर ऐसे मारे कि वह तीन शृङ्गोंवाले (तीन चोटीवाले) पर्वत के समान दिखाई देने लगा ।

अब क्रोधोन्मत्त होकर 'विशुक्र' ने भगवती 'बालाम्बा' को अपनी बलवती भुजाओं से उठाकर ऊपर की ओर उछाल दिया, किन्तु 'श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी' ने तेजी से नीचे झपटकर उसके शिर पर एक ऐसा दृढ़ मुष्टि-प्रहार किया, जिससे वह पुनः मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा और उसके शिर से धारा-प्रवाह रुधिर बहने लगा ।

तब शीघ्रता से 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' अपने रथ में विराजमान होकर 'भण्डासुर' के सम्मुख पहुँचने को बढ़ीं किन्तु तभी 'विशुक्र' पुनः मूर्छा-मुक्त होकर तीव्र-गामी अश्व पर आसीन होकर उनके मार्ग में बाधा पहुँचाने के लिए आ गया । यह देखकर 'बालाम्बा' ने अपने तीक्ष्ण वाण-समूह से उसके 'वाजि-राज' (श्रेष्ठ घोड़े) को मार गिराया और अन्य दूसरे तीखे शर से 'विशुक्र' के वक्षः-स्थल को वेध कर उसे फिर धरा-शायी बना दिया । 'भगवती बालाम्बा' के इस विलक्षण पराक्रम का अवलोकन कर दैत्य और आदित्य (देवता)—सभी आश्चर्यान्वित होकर कहने लगे—

"अहो ! जिस पराक्रमी 'विशुक्र' ने कई वार इन्द्रादि देवताओं को हराकर संग्राम में विजय प्राप्त की है, उस विष्णु के समान पराक्रमी 'विशुक्र' को 'भगवती बालाम्बा' ने लीला से ही धरा-शायी कर दिया है । अब तो यह 'बालाम्बा' ही सबके लिए अकेली पर्याप्त है । 'श्रीभगवती ललिता महा-राज्ञी' के तो आने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी ।"

सचमुच ही अब 'भगवती बालाम्बा' का रथ बिना किसी विघ्न-बाधा के दैत्य-राज भण्डासुर के सामने पहुँच गया और भगवती अपने मन में यह कहती हुईं कि—'अब मैं इस दैत्य-राज के साथ युद्ध करके प्रसन्न होऊँगी', भण्डासुर के ऊपर वाण-वर्षा करने लगीं ।

इस ओर 'भण्डासुर' भी 'भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी' को अपने सम्मुख होकर वाणों की वर्षा करती हुई देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने मन में सोचने लगा कि—'यह वही समय आ गया है, जिसकी मैं बहुत देर से प्रतीक्षा में था और जिस समय की ओर 'श्रीभगवती लक्ष्मी जी' ने सङ्केत भी किया था। मैंने भक्ताभिलाष-पूरणी महा-देवी के दर्शन पाए हैं और अब मेरे देहावसान का समय निकट आ गया है। मैं इनके द्वारा निहत होकर श्रीनगर में विराजमान होऊँगा। यह 'बालाम्बा' 'भगवती श्रीललिता महा-राज्ञी' की अद्भुत पराक्रम-वाली कुमारी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मुझे मारने के लिए भगवती श्रीललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी भी अवश्य पधारेंगी क्योंकि भगवती लक्ष्मी का कथन अन्यथा नहीं हो सकता। अस्तु, अब मैं यथा-सम्भव उपचारों को जुटाकर विधि-वत् इनकी पूजा करूँगा।'

ऐसा मन में विचार कर उसने धनुष-बाण उठाया और 'वारुणास्त्र' से अभिमन्त्रित कर वाणों को भगवती बाला के चरणों की ओर भेजा और एक वाण फूलों के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर 'बालाम्बा' के शिर की ओर छोड़ा। पूर्व के दो वाणों ने भगवती के पैरों का जल से प्रक्षालन किया और तीसरे पुष्प-वाण ने भगवती के शिर पर पुष्प-मालाओं की वर्षा की। इस अद्भुत बात को देखकर रथ-नायिका ने 'श्रीबालाम्बा' से पूछा—"यह क्या मामला है ? क्या असुरेश्वर ने ही यह जल-वर्षा और पुष्प-वर्षा की है ? अथवा आपने अपनी शक्ति से यह सब कुछ किया ? इसने तो वाण चलाए और उनसे पूजा-सामग्री निकली ! यह क्या बात है ? मेरी आशङ्का दूर कीजिए।"

रथ-नायिका की आशङ्का को सुनकर 'श्रीबालाम्बा' भगवती उसका समाधान करने लगीं—"हे प्रिये ! रथ-नायिके ! सुनो, यह 'भण्डासुर' नामक दैत्य-राज इस जन्म से पहले भगवती लक्ष्मी का महा-दूत था और इसका नाम था 'माणिक्य-शेखर'। यह 'भगवती ललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी' का श्रेष्ठ भक्त था। शाप के कारण यह दैत्य-राज बन गया। इस युद्ध में मारे जाने पर यह 'श्रीललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी' की सुन्दर-पुरी 'श्रीपुरी' में विराजमान होगा। मुझे श्रीललिताम्बा की सुपुत्री जानकर इसने यथोपपन्न सामग्री से मेरी पूजा की है। इसको तुम मेरी प्रकृति मानो।"

ऐसा कहकर 'श्री बालाम्बा' ने एक वाण उसकी ओर छोड़ा। वह वाण पञ्च-शाख (पाँच अँगुलियोंवाला हाथ) बनकर उसके शिर को स्पर्श करने लगा। इस बात को देखकर 'भण्डासुर' समझ गया कि 'भगवती ने अपना हाथ मेरे शिर के ऊपर रख दिया है।' अतः वह बहुत प्रसन्न हो गया। इस बात को देखकर रथ-नायिका बड़ी आश्चर्यान्वित हो गई।

तदनन्तर 'बालाम्बा' और 'भण्डासुर' का महा-घोर युद्ध हुआ, जो एक प्रकार का द्वन्द्व-युद्ध था। 'भण्डासुर' बड़ी भक्ति के साथ अपने अद्भुत पराक्रम से 'भगवती बालाम्बा' को प्रसन्न करने लगा। वे दोनों परस्पर एक-दूसरे की प्रशंसा करने लगे।

भण्डासुर ने कहा—'हे देवि ! आपकी रण-शैली बहुत अच्छी है।'

भगवती बोलीं— 'हे वीर भण्डासुर ! तुम रण-श्लाघ्य हो।'

इस प्रकार भगवती भण्डासुर की प्रशस्ति करती थीं और भण्डासुर श्रीबालाम्बा की स्तुति करता था।

इस प्रकार बहुत देर तक परस्पर द्वन्द्व-युद्ध होता रहा। अन्त में 'भण्डासुर' की शक्ति जब कुछ क्षीण होने लगी, तब विषङ्ग, विशुक्र और कुटिलाक्ष अपनी सेनाओं के साथ सहायतार्थ पहुँचे। वे सभी आग उगलनेवाले अस्त्र-शस्त्रों से 'भगवती बालाम्बा' के साथ लड़ने लगे।

'बालाम्बा भगवती' चारों ओर सहज ही बड़े कौशल के साथ शत्रुओं से लोहा ले ही रही थीं कि इतने में सेना-नायिका भगवती 'दण्ड-नाथा' दूसरी ओर से शत्रुओं को परास्त कर वहाँ पहुँच गईं। 'श्रीबालाम्बा' को शत्रुओं के साथ अकेली लड़ती हुई देखकर वे चकित हो गईं। उन्होंने श्रीबालाम्बा से निवेदन किया कि—"आपको यह भयङ्कर युद्ध न करना चाहिए। आपने बड़ी वीरता के साथ इन दैत्यों से सङ्घर्ष किया है। किन्तु यदि भगवती श्री महा-राज्ञी सुनेंगी कि आप अकेली ही इन दुर्मद दैत्यों के साथ भिड़ रही हैं, तो वे अत्यन्त व्याकुल होंगी। अतः आपको उनके पास चली जाना चाहिए।"

इस प्रकार 'बालाम्बा' को समझा-बुझा कर सेना-नायिका दण्ड-नाथा ने घुड़सवार-शक्तियों की स्वामिनी अश्व-नाथा नायिका को आज्ञा दी कि--'तुम श्रीबालाम्बा को अपने साथ लेकर श्री ललिता महा-राज्ञी के पास सौंप आओ और पुनः शीघ्र समराङ्गण में लौट आओ।'

भगवती अश्व-नाथा श्रीबालाम्बा को अपने रथ में बिठाकर श्रीललिता महा-राज्ञी के पास गईं और उनसे निवेदन किया कि--"श्रीबालाम्बा कुमारी ने विशुक्र, विषङ्ग और कुटिलाक्ष को परास्त कर दैत्य-राज 'भण्डासुर' के साथ भी घोर भयङ्कर संग्राम किया है। भगवती वाराही (दण्ड-नाथा) ने इन्हें बड़ी कठिनता से समझा-बुझाकर आपके पास भेजा है।"

इस प्रकार निवेदन कर भगवती अश्व-नाथा युद्ध-भूमि को लौट गईं।

श्रीललिता महा-राज्ञी ने 'श्री कुमारी बालाम्बा' को अपने अङ्क में बिठाकर शिर को सूँघा और कहा कि--"वत्से ! ऐसा साहस भविष्य में कभी न करना। तुम बिना मेरी आज्ञा के लड़ने के लिए उद्यत होकर युद्ध-भूमि में क्यों चली गईं ?"

'श्रीकुमारी बाला' ने नम्रता से निवेदन किया कि—"माता जी ! यदि मैं आपसे पूछती, तो आप मुझे कभी आज्ञा न देतीं। अतः मैं बिना पूछे ही चुपचाप निकल गई। मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ, किन्तु यदि आप सत्य मानें, तो मुझे अभी युद्ध से तृप्ति नहीं हुई है। सेना-नायिका 'दण्ड-नाथा' ने मुझे बाध्य कर संग्रामाङ्गण से वापिस भेज दिया।"

श्री भगवती ललिता महा-राज्ञी ने अपनी कुमारी 'श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी' को शान्त कर कहा—"वत्से ! भविष्य में पुनः ऐसा कभी न करना।"

इस प्रकार 'श्री बालाम्बा' के युद्ध-पराक्रम की दूसरी कथा **'हरितायन संहिता'** अथवा **'त्रिपुरा-रहस्य'**, **'माहात्म्य-खण्ड'**, ६३-६४-६५ वें अध्याय में वर्णित है। इस 'त्रिपुरा-रहस्य', 'माहात्म्य-खण्ड' के कुल अस्सी अध्याय (६६८७ श्लोक) हैं। 'त्रिपुरा-रहस्य' ग्रन्थ के—१ माहात्म्य-खण्ड, २ ज्ञान-खण्ड और ३ चर्या-खण्ड नाम से तीन खण्ड हैं। इस ग्रन्थ की रचना पुराणों की तरह शिथिल बन्धवाली नहीं है, अपितु प्रगाढ़-बन्धवाली दीर्घ-समास-युक्त काव्य-मयी रचना है।

श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी

का

अर्थ

बाला, बाला त्रिपुरा, त्रिपुरा बाला, बाला-सुन्दरी, बाला त्रिपुर-सुन्दरी, पिण्डा-भूता त्रिपुरा, काम-त्रिपुरा, त्रिपुर-भैरवी, वाक् त्रिपुरा, महा-लक्ष्मी त्रिपुरा, वह्नि-त्रिपुरा, मोहिनी त्रिपुरा, भ्रामरी त्रिपुरा, नन्दा-त्रिपुरा, त्रैलोक्य-स्वामिनी त्रिपुरा, हंसिनी त्रिपुरा, बाला-भैरवी, सम्पद्-प्रदा भैरवी, चैतन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, अघोर भैरवी, महा-भैरवी, ललिता भैरवी, कामेशी भैरवी, रक्त-नेत्रा भैरवी, नित्या भैरवी, मृत-सञ्जीवनी भैरवी, मृत्यञ्जय-परा भैरवी, वज्र-प्रस्तारिणी भैरवी, कमलेश्वरी भैरवी, सिद्ध-कौलेश भैरवी, डामर भैरवी, कामिनी भैरवी, सुन्दरी भैरवी, श्रीललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी, श्रीललिता राज-राजेश्वरी, षोडशी, महा-षोडशी तथा षोडशी के अन्य भेद—सभी "श्री श्रीविद्या" के नाम से पुकारे जाते हैं। इन सभी विद्याओं की उपासना ऊर्ध्वाम्नाय से होती है।

बाला, बाला त्रिपुरा और बाला त्रिपुर-सुन्दरी नामों से एक ही महा-विद्या को सम्बोधित किया जाता है। किसी भी नाम से उपासना की जाय, उपासना तो 'जगन्माता' की ही की जाती है। 'नारदीय संहिता' में लिखा है कि—'वेद, धर्म-शास्त्र, पुराण, पाञ्च-रात्र आदि शास्त्रों में एक 'परमेश्वरी' का वर्णन है, नाम चाहे भिन्न-भिन्न हों किन्तु 'महा-शक्ति' एक ही है।

कहीं मन्त्रोद्धार-भेद से, कहीं आसन-भेद से, कहीं सम्प्रदाय-भेद से, कहीं पूजा-भेद से, कहीं स्वरूप-भेद से, कहीं ध्यान-भेद से "त्रिपुरा" के बहुत प्रकार हैं। कहीं त्रिपुर-भैरवी, कहीं त्रिपुरा-ललिता, कहीं त्रिपुर-सुन्दरी, कहीं इन नामों से पृथक्, कहीं मात्र 'त्रिपुरा' या 'बाला' ही कही जाती है। इसलिए तन्त्र-वचन है कि—

न गुरोः सदृशो दाता, न देवः शङ्करोपमः। न कौलात् परमो योगी, न विद्या 'त्रिपुरा' परा॥

अर्थात् 'श्रीगुरु-देव' के समान कोई दाता नहीं है, 'शङ्कर भगवान्' के समान कोई देवता नहीं, 'कौल' से अतिरिक्त कोई परम योगी नहीं और "भगवती त्रिपुरा" (त्रिपुर-सुन्दरी) से परे कोई उत्कृष्ट देवी (पर-देवता) नहीं है। 'सुन्दरी-स्तव' में लिखा है कि

ब्राह्मी (ब्रह्माणी), रौद्री (माहेश्वरी) और वैष्णवी––ये तीन महा-शक्तियाँ हैं। इन तीनों महा-शक्तियों की समष्टि मूर्ति 'त्रिपुर-सुन्दरी' हैं। यथा––

ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति, शक्तयस्तिस्र एव हि। पुरं शरीरं यस्याः सा, त्रिपुरेति प्रकीर्तिता ॥

तन्त्रान्तर में भी लिखा है—

प्रकाशश्च विमर्शश्च, स्पन्दः सत्ता चितिः क्रिया। स्फुरत्तेति समाख्याता, सा वै त्रिपुर-सुन्दरी ॥

'त्रिपुरा' शब्द की व्याख्या—'तिस्रः पुरस्त्रि-पथा विश्व-चर्षणी' इत्यादि 'त्रिपुरा महोपनिषद्' के श्रीभास्कर राय कृत भाष्य (मूल्य ५-०० रु० उपलब्ध) में निम्न प्रकार है––

'...'त्रिपुरा' अर्थात् तीन पुरों की अधीश्वरी। तीन पुरियों में जाने के लिए मार्ग भी तीन हैं। 'मुक्ति' के पाँच प्रकार—१ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य, ४ सायुज्य और ५ कैवल्य हैं। इनमें से 'सालोक्य' का एक मार्ग है और 'कैवल्य' का एक। शेष तीन––'सायुज्य, सारूप्य और सामीप्य' का एक अलग मार्ग है। इस प्रकार कुल तीन मार्ग हुए। त्रिविध मार्ग होने से पुरियाँ भी तीन हैं। तीन पुरियों की प्राप्ति अभीष्ट होने से पर देवता को 'त्रिपुरा' (त्रिपुर-सुन्दरी) कहा गया है।'

बहु-वाचक विशेषण से सम्पन्न एक-वाचक विशेष्य––"त्रिपुरा" से अनेकता में एकता के दर्शन की पुष्टि होती है। त्रि-रूपात्मकता में वस्तुतः एक-रूपत्व ही निहित है। 'कालिका पुराण' में कहा गया है––

त्रिकोण - मण्डलं चास्या, भू-पुरं च त्रि-रेखकम्। मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरः प्रोक्तस्तथा रूप - त्रयं पुनः ॥
त्रिविधा कुण्डली शक्तिस्त्रि-देवानां च सृष्टये। सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्, तस्मात् तु त्रिपुरा मता ॥

'मन्त्र-शास्त्र' में 'त्रिपुरा' का अर्थ इस प्रकार किया गया है—

'त्रि-मूर्ति-सर्गाच्च पुरा भवत्वात्, त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात्, प्रायोऽम्बिकाया त्रिपुरेति नाम ॥
त्रिभ्यः पुरा त्रिपुरा—इति च।

अर्थात् त्रिमूर्ति––१ ब्रह्मा, २ विष्णु और ३ महेश्वर–की सृष्टि से पूर्व जो विद्यमान थी तथा जो वेद-त्रयी—१ ऋग्, २ यजुः और ३ साम-वेद–से पूर्व विद्यमान थी एवं त्रि-लोकों—१ स्वर्ग, २ पृथ्वी और ३ पाताल—के लय होने पर भी पुनः उनको ज्यों-का-त्यों बना देनेवाली भगवती का नाम 'त्रिपुरा' है।

विश्व भर में तीन-तीन वस्तुओं के जितने भी समुदाय हैं, वे सब भगवती बाला त्रिपुर-सुन्दरी के 'त्रिपुरा' नाम में समाविष्ट हैं। अर्थात् संसार में त्रि-संख्यात्मक जो कुछ

है, वे सभी वस्तुएँ 'त्रिपुरा' के तीन अक्षरोंवाले नाम से ही उत्पन्न हुई हैं। अतएव 'देवी-स्तोत्र-पञ्चक' के 'लघु-स्तव-राज' में श्रीलघ्वाचार्य ने लिखा है--

"हे भगवति ! बाला-त्रिपुर-सुन्दरि ! हे माता ! संसार में जो कुछ भी तीन संख्या से नियमित की हुई, त्रि-वर्गादिक धर्म, अर्थ और काम आदि वस्तुएँ हैं, वे समग्र वस्तुएँ यथार्थ रूप से तुम्हारे 'त्रिपुरा' नाम में ही मिलती हैं। अर्थात् जो कुछ संसार में तीन नामवाली वस्तुएँ है, वे सब तुमसे ही पैदा हुई हैं।"

श्रीलघ्वाचार्य ने त्रि-संख्यात्मक वस्तुओं में कतिपय त्रि-वर्गात्मक वस्तुओं के नाम भी गिनाए हैं। जैसे 'तीन देवता'—१ ब्रह्मा, २ विष्णु और ३ महेश। 'देवता' का अर्थ 'गुरु' भी है। अतः 'तीन गुरु'—१ गुरु, २ परम गुरु और ३ परमेष्ठी गुरु।

'तीन अग्नि'--१ गार्हपत्य, २ दक्षिणाग्नि और ३ आहवनीय। अग्नि या ज्योति, अतः 'तीन ज्योतियाँ'—१ हृदय-ज्योति, २ ललाट-ज्योति और ३ शिरो-ज्योति।

'तीन शक्तियाँ'--१ इच्छा-शक्ति, २ ज्ञान शक्ति और ३ क्रिया-शक्ति। शक्ति से 'तीन देवियों' का भी बोध होता है--१ ब्रह्माणी, २ वैष्णवी और ३ रुद्राणी।

'तीन स्वर'--१ उदात्त, २ अनुदात्त और ३ स्वरित। अथवा 'मन्त्र-शास्त्र' में कहे हुए षोडश स्वरों में से--१ 'अ'-कार, २ 'उ'-कार और ३ विन्दु।

'त्रैलोक्य' (तीन लोक)—१ स्वर्ग, २ मृत्यु और ३ पाताल। 'लोक' शब्द से देहस्थ 'चक्र' का अर्थ भी लिया जाता है। 'तीन चक्र'—१ आज्ञा, २ शीर्ष और ३ ब्रह्म-ज्ञान।

'त्रि-पदी' (तीन स्थान)—१ जालन्धर पीठ, २ काम-रूप पीठ और ३ उड्डियान-पीठ। 'पद' शब्द से 'नाद' शब्द का भी बोध होता है। 'तीन नाद'—१ गगनानन्द, २ परमानन्द और ३ कमलानन्द। 'त्रि-पदी' से तीन पदोंवाली 'गायत्री' भी ली जाती है।

'त्रि-पुष्कर' (तीन तीर्थ)—१ शिर, २ हृदय और ३ नाभि। अथवा 'पुष्कर' से तीनों पुष्कर—१ ज्येष्ठ पुष्कर, २ मध्यम पुष्कर और ३ कनिष्ठ पुष्कर।

'त्रि-ब्रह्म' (तीन ब्रह्म)—१ इड़ा, २ पिङ्गला और ३ सुषुम्णा। अथवा 'ब्रह्म' शब्द से—१ अतीत, २ अनागत और ३ वर्तमान-काल को प्रकाशित करनेवाले ब्रह्म कहे गए हैं। जैसे--१ हृदय, २ व्योम और ३ ब्रह्म-रन्ध्र।

त्रयः वर्णाः (तीन वर्ण)—१ ब्राह्मण, २ क्षत्रिय और ३ वैश्य। अथवा 'वर्ण' शब्द से बीजाक्षरों का ग्रहण होता है--१ वाग्-बीज, २ काम-बीज और ३ शक्ति-बीज।

मानव मात्र के लिए बल-दायिनी 'बाला' शक्ति माता का वर्णन

श्रीबाला की शक्ति

'बाला', 'बालिका', 'बालक' और 'बाल' शब्दों का महत्त्व

'बाला', 'बालक', 'बालिका' और 'बाल' (केश)—ये शब्द 'भारतीय साहित्य' में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। दुर्भाग्य की बात है कि इन शब्दों की महिमा जाने बिना लोग इनका प्रयोग इनके विपरीत अर्थ में तो करते ही हैं, इनके अर्थ को हीन बना डालते हैं। इन शब्दों में जो व्यापकत्व सन्निहित है, वह मानव को एक ओर उच्च शिखर पर पहुँचानेवाला है, तो दूसरी ओर इनके सु-प्रयोग से चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की प्राप्ति भी हो सकती है। यास्क का कहना है—

'बलयति पुत्रान् लोकान् वा इति बाला'

अर्थात् जो अपने पुत्रों को तथा संसार को बल प्रदान करती है, उसे 'बाला' कहते हैं।

दूसरे वैयाकरणों ने बताया है कि "जिसमें बल है, वही 'बाला' कहलाती है।" 'सीधे-सादे अर्थ में यह समझना चाहिए कि जो संसार के प्राणियों को बल प्रदान करती है, उसे 'बाला' कहते हैं।' वेद-वाक्य है—**'एकः शब्दः सु-प्रयुक्तः, स्वर्गे लोके च काम-धुक् भवति।'**

अर्थात् अच्छी तरह से प्रयोग किया गया एक शब्द भी इस लोक में तथा पर-लोक में इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला होता है।

'बाला' अर्थात् नख से शिखा तक, रक्त से ओज तक बल प्रदान करनेवाली

उक्त नियम के अनुसार जो लोग 'बाला' को 'अबला' के अर्थ में तथा चौका-चूल्हा सँभालनेवाली 'नारी' के अर्थ में करते और समझते हैं, ऐसे लोगों की बुद्धि का—दिमाग का दिवाला ही निकल गया है, यह कहना उचित ही होगा क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि 'बाला' का अर्थ ही है वह स्त्री, जो बल को बढ़ाती है। वह पुत्र के लिए माता हो सकती है, भाई के लिए 'बहन' और पति के लिए 'पत्नी'। इसीलिए आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव-प्रकाश' में कहा गया है—**'बाला स्त्री क्षीर-भोजनम्।'**

अर्थात् 'बाला' की तुलना बल-वर्धक खीर के भोजन से की गई है। अधिक दूर न जाकर घर में ही उदाहरण खोज निकालना चाहिए कि वही 'बाला' (स्त्री) नव-जात शिशु को दूध पिला कर हृष्ट-पुष्ट कर सकती है, जो 'बाला' है। यह क्षमता किसी दूसरी महिला में नहीं है। इससे भी यही स्पष्ट होता है कि 'बाला' वही है, जो हमारे समस्त अङ्गों को बल प्रदान करती है। नख से शिखा तक, रक्त से ओज तक, बुद्धि से बल तक जो प्राणी को बल प्रदान करती है, वह शक्ति-मती अवश्य है, जिसके बिना प्राणी अपने को निस्सहाय समझता है।

इसमें सन्देह नहीं कि एक पति भी अपनी 'बाला' (पत्नी) के वियोग में उसी तरह रोता-कलपता है, विलाप करता है तथा अनुभव करता है कि मेरी जीवन-सङ्गिनी, मेरी रक्षा करनेवाली, माता की तरह पालन करनेवाली, दासी की तरह सेवा करनेवाली, बन्धु-मित्र की तरह स्नेह करनेवाली, मन्त्री की तरह सलाह देनेवाली अब नहीं रही—मेरी शक्ति क्षीण हो गई, मैं निर्बल हो गया।

इसी प्रकार 'वाला' (माता) से विछुड़ जाने पर बालक भी बिलख-बिलख कर रोता है कि 'मेरी रक्षा, पालन-पोषण करनेवाली, मेरी गन्दगी दूर करनेवाली, प्यार-दुलार करनेवाली, मेरे जीवन के बोझ को ढोनेवाली अब नहीं रही ! मैं अब जीवित नहीं रह सकूँगा क्योंकि मेरा बल छिन गया है।'

अब विचारने की बात है कि वह कौन-सी अद्भुत शक्ति है उस 'बाला' में, जिसके बिना जगत् के प्राणी निर्बल और निष्प्राण हो जाते हैं ? वह है 'बाला'--बल प्रदान करनेवाली शक्ति माता। इस

'बाला' अर्थात् सर्व-शक्ति-सम्पन्न, आदि-माता

प्रसङ्ग में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पशु - पक्षियों में भी यही बात है। मानव मात्र के लिए तो 'बाला' बल-दायिनी है ही।

प्रकृति के पारखी लोगों का मत है कि मानव के लिए जिस तरह 'बाला' बल - वर्द्धिनी समझी जाती है, उसी तरह लता, पेड़-पौधे आदि में भी 'बालाएँ' होती हैं, जो फूल-फलों को शक्ति-सम्पन्न बनाती हैं। उन्हीं फलों से जगत् बल-शाली बनता है। इसी तरह और भी गहराई में जायँ, तो पता चलेगा कि 'बाला' ही पृथ्वी माता है, जो सर्व-शक्ति-सम्पन्न ही नहीं, चराचर को धारण और पोषण करनेवाली है, उसे भी 'बाला' शास्त्रों में कहा गया है। इसीलिए पुराणों में बताया गया है कि वही मेरी माता है, जो आदि-काल से मेरी रक्षा करती आ रही है--

या माता सर्व-देवानां, युगादौ परि-कीर्तिता। आदि-मातेति विख्याता, नाम्ना तेन कुरुद्वह ! ॥

अर्थात् आदि-काल में, हे कुरुद्वह ! समस्त देवताओं की जो माता कही जाती थी, वही हम लोगों की भी 'आदि-माता' के नाम से विख्यात है।

'बाला' का काम ही है वृद्धि करना। वह मानव या किसी प्राणी - विशेष को ही बल प्रदान करती हो, ऐसा नहीं--आदि-युग से ही यह जगन्माता इस संसार को बढ़ाती चली आ रही है। इसी 'आदि-माता' की निर्मित सृष्टि जगत् को जननी से मिला रही है। बल-वर्द्धिनी माता की अद्भुत शक्ति से जो परिचित हो गया है, उसका जन्म तो सफल हो ही जाता है, उसके सामने त्रिभुवन की सम्पत्ति भी तृण के समान तुच्छ हो जाती है क्योंकि जिस पुत्र पर माता-पिता के स्नेह का हाथ फिर जाता है, वह धन्य-धन्य हो जाता है। वह अनुभव करता है कि माता का आशीर्वाद त्रिलोक का ऐश्वर्य है। मातृ-भक्त पुत्र भी यही चाहता है कि मेरी माता का हस्त-कमल मेरे सिर पर आशीर्वाद करते हुए एक बार भी घूम जाय। पुत्र चाहता है (देवी-भागवत, ५१/३१)--

तस्यात्मजोऽयं तव पाद-पङ्कजं, भीतः प्रपन्नार्ति - हरोपसादितः।
तत् पालयैनं कुरु हस्त-पङ्कजं, शिरस्यमुष्याखिल-कल्मषापहम् ॥

अर्थात् यह तुम्हारा पुत्र तुम्हारे चरण-कमल के पास पीड़ाओं से पीड़ित हो डरा हुआ बैठा है। इसलिए अखिल पापों के विनाश करनेवाले अपने हस्त-कमल को मेरे शिर पर रखकर मेरी रक्षा करो, पालन करो।

'ज्ञान' और 'कर्म' रूपी बल-वर्द्धिनी मां की प्राप्ति

पुत्र माता से ऐसी प्रार्थना इसलिए करता है क्योंकि वह जानता है कि 'बाला' माता बल-वर्द्धिनी है। वह मेरा बल बढ़ाएगी ही, घटने नहीं देगी। एक बात यह जरूर है कि बल-वर्द्धिनी होती हुई भी वह, जो जिस भाव से उसके समक्ष जाते हैं, उन्हें वैसी ही दीख पड़ती है तथा तदनुरूप फल भी देती है। इसीलिए 'देवी-भागवत' में कहा है--

ब्रह्मैव साऽति-दुष्प्राप्या, विद्याऽविद्या-स्वरूपिणी । योग-गम्या परा-शक्तिः मुमुक्षूणां च वल्लभा ।।

अर्थात् वह बल-वर्द्धिनी मां, कठिनता से प्राप्त होनेवाली ब्रह्म ही है । वह 'विद्या' (ज्ञान) और 'अविद्या' (कर्म) का रूप धारण करनेवाली है । योग-द्वारा ही उसके पास पहुँचा जा सकता है । वह 'परा शक्ति' है और चाहनेवालों के लिए तो प्रिय पत्नी के समान ही है ।

ऐसी जगज्जननी को जो न प्राप्त करे तथा उसे प्राप्त करने की चेष्टा न करे, उसे क्या कहा जा सकता है ! जो मातृ-भक्त नहीं हैं, वे उसके वास्तविक बल को नहीं समझ पाते, लेकिन जो 'बाला' माता की अतुलनीय शक्ति से पूर्ण परिचित हैं, वे जानते हैं कि उसी के कृपा - कटाक्ष से वज्र भी तृण का रूप धारण कर लेता है और तृण वज्र के समान घोर कठोर बन जाता है । उस बल-वती 'बाला' का यह बल है कि वह डङ्के की चोट पर कहती है—

शशको हन्ति शार्दूलं, मशको वै यथा गजम् । साहसं मुञ्च मेधाविन् ! कुरु मे वचनं हितम् ।।

अर्थात् अपनी बुद्धि का व्यायाम, हे मेधा (बुद्धि) धारण करनेवाले पुरुष ! छोड़ो । देखो, मेरी ही कृपा से शशक इतना बल-शाली हो जाता है कि सिंह को भी मार गिराता है और एक तुच्छ मच्छड़ हाथी को मार डालता है । इसलिए अपने साहस को छोड़ो, मेरी हित-कर बात को मानो ।

यह सर्व-विदित है कि जो बुद्धि-वादी इस अदृश्य शक्ति पर विश्वास नहीं करते, वे ऐसी बल-वती माता की सेवा करने से वञ्चित रह जाते हैं, उसकी पूजा-अर्चना में योग - दान नहीं करते, उसका भजन-भाव नहीं करते, उसके प्रिय पात्र बनने की चेष्टा नहीं करते तथा उसके चिन्तन-मनन के लिए कभो समय नहीं निकालते ! वे ही इस जगत् के मन्द-भागी हैं, शोचनीय हैं । 'देवी-भागवत' में ऐसे ही लोगों को चेतावनी देते हुए कहा है—

ते मन्दास्तेऽति-दुर्भाग्या, रोगैस्ते समभि-द्रुताः । येषां चित्ते न विश्वासो, भवेदम्बाऽर्चनादिषु ।।

अर्थात् वे ही प्राणी मन्द (मूर्ख) और अभागे हैं तथा वे ही रोगों से ग्रस्त रहा करते हैं, जिनके हृदय में 'माता' की अर्चना-पूजा आदि के प्रति विश्वास नहीं है ।

'बाला' (बल-वर्द्धिनी) का सेवक कभी निर्बल कैसे रह सकता है ? बल - शाली कभी दुखी कैसे रह सकता है और विश्वासी पर किसकी दया नहीं होती ?

'मूर्खता' माता की दुष्कृपा का ही फल है और 'रोग' को स्पष्ट शब्दों में पाप बताया गया है—**'रोगाः पापाः ।'** इसलिए इस संसार में सुखी और बलवान रहने के लिए माता 'बाला' की शरण में रहना ही चाहिए । इसकी शरण इसलिए भी आवश्यक है कि माता 'बाला' पहले बल प्रदान करती हैं, तब बुद्धि क्योंकि वे जानती हैं कि संसार में पहले पुत्र को 'बल' चाहिए, तब 'बुद्धि' । 'बल' के न रहने पर 'बुद्धि' एक क्षण भी टिक नहीं सकती । इसीलिए राम-भक्त हनुमान को-**'तुम बल-बुद्धि निधान'**—कहा गया है । उन्हें पहले बल प्राप्त हुआ, तब बुद्धि प्राप्त हुई, नहीं तो कहा जाता—'तुम बुद्धि - बल निधान ।' इसका अभिप्राय यही है कि जिनको संसार में कुछ करके दिखाना है, उन्हें पहले 'बल' चाहिए, तब 'बुद्धि' । इन दोनों की प्राप्ति तभी होगी, जब संसार के लोग माता 'बाला' की शरण में आएँगे ।

श्रीबाला-तत्त्व

तन्त्र-मतानुसार साधक का लक्ष्य--'मातृ-तत्त्व' की प्राप्ति

तन्त्र-मत से किसी विद्या द्वारा मातृ-तत्त्व प्राप्त करना ही साधक का लक्ष्य होता है। मातृ-तत्त्व के प्राप्त करने के पश्चात् कुछ भी करना नहीं रह जाता। तत्त्व का अर्थ है 'मूल' या 'विन्दु'। 'विन्दु' के ऊपर प्राण के दृढ़ भाव से अवस्थित न होने पर सहजावस्था प्राप्त नहीं होती। 'तत्त्व' का वैदिक अर्थ 'वेद' है, तान्त्रिक अर्थ 'शक्ति', यौगिक अर्थ 'योग' एवं ज्ञान - यौगिक अर्थ 'कारण' है। सभी का तात्पर्य एक ही है। इससे पता चलता है कि 'विन्दु' ही शक्ति है, जिसे 'नाद' में मिलाना है। 'नाद' शिव - तत्त्व है और 'विन्दु' शक्ति-तत्त्व।

सृष्टि के आदि कारण--'शिव-तत्त्व' और 'शक्ति-तत्त्व'

उक्त दो सिद्धान्त 'शिव' और 'शक्ति' तत्त्व सृष्टि के आदि कारण हैं। वे जब ही कल्पना करते हैं, तभी सृष्टि होने लगती है। महा-प्रलय के बाद जब **'एकोऽहं बहु स्याम प्रजायें'** की कल्पना होती है, तभी शक्ति-तत्त्व शिव-तत्त्व से अलग होता है। उसके पहले वे एक ही रहते हैं। उस एक रहने का नाम 'नाद' है अर्थात् सृष्टि की कल्पना होने के समय निष्क्रिय 'शिव' और सक्रिय 'शक्ति' की जो विपरीत रति होती है, उसे ही 'नाद' कहते हैं और इसी विपरीत रति द्वारा 'विन्दु' की उत्पत्ति होती है।

'शारदा-तिलक' का कहना है कि जब 'निष्कल' परमेश्वर सच्चिदानन्द होकर 'सकल' होते हैं, तब 'शक्ति' उनसे अलग होकर क्रिया-शील हो जाती है। उस शक्ति से 'नाद' और 'नाद' से विन्दु होता है। 'सकल' का अर्थ है 'काल के साथ' और 'निष्कल' का अर्थ है, जहाँ 'काल' भी नहीं है। इसी 'सकल' को सांख्य 'मूल प्रकृति', वेदान्त 'अविद्या' और आगम 'शक्ति' कहते हैं। शिव की 'निष्कल' अवस्था हो या 'सकल', सभी अवस्थाओं में 'शक्ति' उनके साथ ही रहती है।

'महा-काली' एवं 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी' विश्वोत्तीर्णा शक्ति--

'शक्ति' जब 'निष्कल' शिव से युक्त रहती हैं, तब वे चिद् - रूपिणी और विश्वोत्तीर्णा अर्थात् विश्व के बाहर रहती हैं और जब वे 'सकल' शिव के साथ होती हैं, तब वे विश्वात्मिका होती हैं। 'परा शक्ति' वे हैं, जो चैतन्य के साथ विश्रामावस्था में रहती हैं। इनको ही 'कादि-विद्या' में 'महा-काली' कहा जाता है और 'हादि-विद्या' में 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी'।

विश्वात्मका शक्ति 'श्रीबाला'

'नाद' से जो 'विन्दु' उत्पन्न होता है, वही श्री बाला-त्रिपुर-सुन्दरी हैं अर्थात् महा-त्रिपुर-सुन्दरी 'नाद' हैं और श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी 'विन्दु' हैं। जो शक्ति विश्वोत्तीर्णा हैं, वही महा-त्रिपुर-सुन्दरी हैं और जो विश्वात्मिका हैं, वे ही श्रीबाला हैं।

दूसरे प्रकार से विचार करें। उपनिषद् के अनुसार जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ताभिमानी 'विश्व', 'तैजस' और 'प्राज्ञ' पुरुष हैं। इन त्रि-मात्राओं के दर्शन से पता चलता है कि शक्ति ही जगत्-रूप में अभिव्यक्त है। उनका एक और स्वरूप है, जो मनोहर जगत् से भी उत्कृष्ट है किन्तु वह अनुच्चार्य है। यही उत्कृष्ट स्वरूप उनका नित्य स्वरूप है, जिसे 'अर्द्ध-मात्रा' कहा जाता है। वाक्य द्वारा इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

जब उक्त 'अर्द्ध-मात्रा'—नित्य स्वरूप में त्रि-मात्रा का लय होता है, तब 'विन्दु'-रूप प्रकट होता है। जिस 'विन्दु' की अवस्थिति तो है, किन्तु विस्तृति नहीं—वह अंश निर्गुण ब्रह्म का द्योतक है और जिस 'विन्दु' में विस्तृति भी है, वह अंश सगुण ब्रह्म की शक्ति का प्रकाशक है और यही शक्ति 'नाद' है।

जो निर्गुण ब्रह्म के 'गुण' या 'शक्ति' को नहीं मानते, वे ही ब्रह्म से माया को पृथक् करते हैं, किन्तु हम लोग तो माया को देखकर ही ब्रह्म को समझते हैं। जिसकी अवस्थिति है, उसकी कुछ-न-कुछ विस्तृति होगी ही क्योंकि 'विन्दु' समष्टि पदार्थ है। इसलिए 'विन्दु'-रूप निर्गुण है और 'नाद'-रूप सगुण है, जो त्रि-मात्रा-रूप से जगत्-रूप में अभिव्यक्त है। इस प्रकार वे त्रि-मात्रा-रूप में जगज्जननी और अर्द्ध-मात्रा रूप में परा जननी हैं। इसी से यह सिद्धान्त निकलता है कि 'नाद' को 'विन्दु' में युक्त करना चाहिए।

उक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि महा-त्रिपुर-सुन्दरी से श्रीबाला त्रिपुर - सुन्दरी को युक्त समझना आवश्यक है। वास्तव में नामान्तर से दो भेद 'शक्ति' के प्रतीत होते हैं, जो वस्तुतः एक ही हैं, कोई भेद नहीं है। जो 'नाद' है, वही 'विन्दु' है। जो 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी' हैं, वही 'श्रीबाला' हैं।

हिन्दी पद्य
में
भगवती श्रीबालात्रिपुर-सुन्दरी
का
ध्यान

उदित दिवाकर सों दिव्य देह लाल-लाल,
वसन विशेष लाल - लाल दरसत है।
मुख-छवि लाल-लाल तीनों नेत्र लाल-लाल,
हाला पिये लाल-लाल अति हरषत है॥
पोथी लिए एक कर, अक्ष-माल एक कर,
भीति हरै एक, एक वर बरसत है।
लाल-लाल कमल पै समासीन बाला मातु,
भाल पर शशि-कला शुभ सरसत है॥

साधना- क्रम

१

श्रीबाला त्रिपुरा मातृका

किसी देवता का यजन करने से पूर्व शास्त्र यह आज्ञा देता है कि प्रथम उस देवता के स्वरूप बनो, पश्चात् यजन करो। ठीक भी है। यदि भाँग पीनेवाले से दोस्ती करनी है, तो प्रथम भाँग पीना-सीखना आवश्यक है, जिससे मैत्री शीघ्र व स्थायी हो सके। अन्यथा मैत्री का होना असम्भव है। उपासना करने में भी मानव का प्रधान लक्ष्य देवताओं से मैत्री करने का ही है। अतः देवता की साधना करने के लिए यह आवश्यक है कि स्वयं 'देव-स्वरूप' बने। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है—**'देवो भूत्वा यजेत् देवं, नादेवो देवम् अर्चयेत्।'**

इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर, प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रवर्तकों ने, अपने अनुयायी - वर्ग को 'देव-स्वरूप' बनाने की प्रथम व्यवस्था की है। 'वैष्णवों' ने 'भगवान् विष्णु' का यजन करने के लिए उनके प्रधान आयुध 'शङ्ख-चक्र' को शरीर पर धारण करना आवश्यक समझा। अतः शास्त्रों में भी 'तप्त-मुद्रा' का विधान हुआ तथा भगवान् के सदृश ही 'ऊर्ध्व पुण्ड्' धारण करना प्रारम्भ किया गया।

इसी तरह प्रमुख 'शैव', 'भगवान् शिव' के आयुध 'त्रि-शूल' तथा 'भस्म' को धारण कर, शिव-भाव की प्रथम कामना कर शिवोपासना में रत होते हैं। संक्षेप में सभी सम्प्रदायों के आचार्य यथा-शक्य अपने 'इष्ट-देव' के सदृश ही स्वयं बनकर फिर यजन करते हैं।

'तन्त्र-कारों' ने भी 'देवत्व' की प्राप्ति हेतु सुलभ साधनों को खोजकर उनका उपदेश किया है। इन साधनों में पहला साधन 'न्यास' है। 'न्यास' का सीधा-सा अर्थ होता है—रखना या स्थापित करना। अतः जिस देवता की शक्तियों का आप न्यास करेंगे, बस, आपकी आत्मा उस तत्त्व से युक्त हो जाएगी।

न्यासों में **'मातृका - न्यास'** प्रमुख है। लिखा भी है—**'उपास्या मातृका देवी यद्वा भूत-लिपिः परा।'**

'मातृका-न्यास' शुद्ध-विन्दु-युक्त, विसर्ग-सहितादि भेद से अनेक प्रकार का होता है। प्रारम्भिक अवस्था में साधक सभी **'मातृका-न्यास'** नहीं कर सकता। अतः प्रारम्भ में साधकों को केवल अपने देवता की **'मातृकाओं'** का न्यास करना चाहिए। यहाँ **' बाला त्रिपुरा मातृका'** का वर्णन 'श्रीविद्यार्णव तन्त्र' के अनुसार किया जा रहा है—

कामिनी मोदिनी चैव, मदनोन्मादिनी ततः।
द्राविणी खेचरी चैव, घण्टिका च कलावती॥
क्लेदिनी शिव - दूती च, ततश्च सुभगा भगा।
विद्येशी च महा - लक्ष्मी, कौलिनी च सुरेश्वरी॥

स्वराणां शक्तयः प्रोक्तास्ततश्च कुल - मालिनी ।
व्यापिनी च भगा चैव, वागीशी तदनन्तरम् ।।
वषट् - कारी पिङ्गला च, भग - सर्पिण्यतः परम् ।
सुन्दरी च ततो नील - पताका त्रिपुरा ततः ।।
सिद्धेश्वरी ह्यमोघा च, रत्न - मालिन्यतः परम् ।
मङ्गला भग - माला च, नित्या रौद्री ततः परम् ।।
व्योमेश्वरी अम्बिका चाप्यट्टहासा ततः परम् ।
आप्यायिनी च वज्रेशी, क्षोभिणी शाम्भवी तथा ।।
स्तम्भिनी चाप्यनामा च, रक्ता शुक्लाऽपराजिता ।
सर्म्वतिका च विमला, अघोरा घोरया युता ।।
बिम्बादि - भैरवी चैव, सर्वाकर्षिणिका तथा ।
एता पञ्चाशदाख्याता, पञ्चाशद् - वर्ण - विग्रहा ।।

अर्थात्—१ कामिनी, २ मोदिनी, ३ मदना, ४ उन्मादिनी, ५ द्राविणी, ६ खेचरी, ७ घण्टिका, ८ कलावती, ९ क्लेदिनी, १० शिव - दूती, ११ सुभगा, १२ भगा, १३ विद्येशी, १४ महा-लक्ष्मी, १५ कौलिनी, १६ सुरेश्वरी, १७ व्यापिनी, १८ भगा, १९ वागीशी, २० वषट्-कारी, २१ पिङ्गला, २२ भग-सर्पिणी, २३ सुन्दरी, २४ नील-पताका, २५ त्रिपुरा, २६ सिद्धेश्वरी, २७ अमोघा, २८ रत्न - मालिनी, २९ मङ्गला, ३० भग-माला, ३१ नित्या, ३२ रौद्री, ३३ व्योमेश्वरी, ३४ अम्बिका, ३५ अट्टहासा, ३६ आप्यायिनी, ३७ वज्रेशी, ३८ क्षोभिणी, ३९ शाम्भवी, ४० स्तम्भिनी, ४१ अनामा, ४२ रक्ता, ४३ शुक्ला, ४४ अपराजिता, ४५ सर्म्वतिका, ४६ विमला, ४७ अघोरा, ४८ घोरा, ४९ बिम्ब-भैरवी, ५० सर्वाकर्षिणी ।

पञ्चाशत् शुद्ध मातृका के साथ मातृका-स्थलों पर, इन मातृकाओं का न्यास करने से साधक **'बाला-स्वरूप'** हो जाता है तथा उसके पश्चात् जितने भी न्यास किए जाएँगे, वे सब भगवती बाला के न्यास-वत् योग-वाही हो जाएँगे ।

२

'त्रिपुरा' के वीजों की सरल साधना

('कौलावली निर्णय' के अनुसार)

'कौलावली निर्णय' में 'त्रिपुरा' के वीजों की सरल साधना इस प्रकार वर्णित है—साधक शुक्ल वस्त्र पहन कर, श्वेत गन्धादि से भूषित होकर, शुक्ल पुष्प - माला धारण कर, श्वेत आसन पर बैठकर, शुक्ल पुष्पों और श्वेत रङ्ग के नैवेद्य से, जो लड्डू, खीर, दुग्ध, नाना प्रकार के अन्नों, शर्करा, नाना प्रकार के फलों से युक्त हो, 'वाग्भव-बीज' (ऐं) की साधना करे। 'वागीश्वरी' का ध्यान करते हुए साधक 'वाग्भव-वीज' का जप करे। ध्यान यह है—

कर्पूर-धवलां शुभ्र-पुष्पाभरण-भूषिताम्। अत्यन्त-शुभ्र - वसनां वज्र-मौक्तिक-भूषणाम्॥
मुक्ता-फल-समुद्भूत-जप-माला - लसत्-कराम्। पुस्तकं वर-दानं च दधतीमभय-प्रदाम्॥

इस प्रकार ध्यान कर 'वागीश्वरी' का यथा-विधि पूजन करे। फिर यह भावना करे कि वागीश्वरी मूलाधार से ब्रह्म-रन्ध्र-पर्यन्त पीयूष-वर्षा करती हुई, ज्योतिर्मयी होकर जिह्वाग्र में स्थित है। यह भावना करता हुआ साधक पुरश्चरण की संख्या (तीन लाख) के अनुसार 'वाग्भव-वीज' का जप करे। इस साधना से अत्यन्त मूर्ख और जड़ व्यक्ति भी, जो एक पद तक शुद्धता-पूर्वक न बोल सकता हो, वृहस्पति के समान वाग्मी और विद्वान् हो जाता है।

'काम-वीज' की साधना रक्त मन्दिर में स्थित होकर, रक्त-वस्त्र, रक्तालङ्कार और लाल चन्दनादि से भूषित हो, नाना प्रकार के लाल पुष्पों तथा विविध प्रकार के लाल रङ्ग के नैवेद्यों से करनी चाहिए। 'कामेश्वरी' का ध्यान करते हुए साधक 'काम-वीज' (क्लीं) का जप करे। ध्यान यह है—

मूलादि-ब्रह्म-रन्ध्रान्तं स्फुरद्-दीप्ति-स्वरूपिणीम्। बन्धूक-कुसुमाकार-कान्ति-भूषण-भूषिताम्॥
इक्षु-कोदण्ड-पुष्पेषु वराभय-लसत्-कराम्। उद्-दीप्त-कान्ति-सिन्दूर-भाल-त्रिनयनान्विताम्॥

इस प्रकार ध्यान कर 'कामेश्वरी' का यथा-विधि पूजन करे। तदनन्तर पुरश्चरण की संख्या (तीन लाख) के अनुसार 'काम-वीज' का जप करे। इस साधना के फल-स्वरूप त्रैलोक्य क्षण भर में वशीभूत होता है और साधक साक्षात् 'कामदेव' के समान जगत् में शोभायमान होता है।

'शक्ति-वीज' की साधना में साधक को स्व-शरीर में मूलाधार के ब्रह्म-रन्ध्र तक व्याप्त 'शक्तीश्वरी' का ध्यान निम्न प्रकार करना होता है—

स्रवत्-पीयूष-धाराऽभिवर्षन्तीं विष-हारिणीम् । हेम-प्रभा-भासमानां विद्युल्लता-सम-प्रभाम् ।।
स्फुरच्चन्द्र - कला - पूर्ण - कपालं वरदाभये । ज्ञान-मुद्रां च दधतीं साक्षादमृत - रूपिणीम् ।।

इस प्रकार ध्यान कर सुवर्ण रङ्ग के उपचारों से पूजन कर पूर्व-वत् पुरश्चरण की संख्या (तीन लाख) के अनुसार 'शक्ति-वीज' का जप करे । इससे साधक नाना प्रकार के विघ्नों, भूत-प्रेतादि बाधाओं और व्याधियों का अति शीघ्र नाश करने में समर्थ होता है ।

जो साधक उक्त त्रि-कूट-मयी भगवती त्रिपुरा का 'नाभि-मण्डल-हृत्-पद्म-मुख-मण्डल-मध्यगा पद्म-राग-मणि-स्वच्छा' परिपूर्णा-रूप में ध्यान करता हुआ साधना में तत्पर होता है, वह आठ गुना अधिक ऐश्वर्यवान् होता है । 'मातृ-चक्र' उसके शरीर में ही होता है, जिसके प्रताप से वह पुत्रवान्, धनवान्, धीर होकर सुखी होता है ।

पूर्ण-विद्या अर्थात् पूरे मन्त्र के जप से सभी प्राणी साधक के वशीभूत होते हैं । 'वाग्भव' से 'वाक्-पतित्व' प्राप्त होता है, 'काम-वीज' से 'कामदेव-समान' होता है और 'शक्ति-वीज' से 'शिवत्व' प्राप्त होता है । कूट-त्रय के जप से 'सर्व-सिद्धि' होती है ।

३

त्र्यक्षरी मन्त्र की साधना

क—मन्त्र-उद्धार

भगवती बाला के 'त्र्यक्षर मन्त्र' (**ऐं क्लीं सौः**) का उद्धार 'मन्त्र - महोदधि' में इस प्रकार दिया है—

दामोदरश्चन्द्र - युतः आद्यं वाग् - वीजमीरितम् ।
विधिर्वासव - शान्तीन्दु - युक्तं कामाभिदं परम् ।
सङ्कर्षण - विसर्गाढ्यो भृगुस्तार्तीयमीरितम् ।
त्रि - वीजा गदिता बाला जगत् - त्रितय - मोहिनी ।।

अर्थात्—दामोदर = 'ऐ'-कार, चन्द्र-युक्त = अनुस्वार से युक्त—यह 'त्र्यक्षरी' का पहला वीज (ऐं—**वाग्-वीज**) है । विधि = 'क'-कार, वासव = 'ल' कार, शान्ति = 'ई'-कार और इन्दु = चन्द्रमा = अनुस्वार—यह 'त्र्यक्षरी' का दूसरा वीज (**क्लीं—काम-वीज**) है । सङ्कर्षण = औकार, विसर्गाढ्यः = विसर्ग से युक्त, भृगुः = 'स'-कार—यह 'त्र्यक्षरी' का तीसरा वीज (**सौः—शक्ति-वीज**) है । यह त्रि - वीजा (**ऐं क्लीं सौः**)—तीन बीजाक्षरोंवाली बाला-विद्या जगत्-त्रय को मोहित करनेवाली है ।

'मन्त्र-कोष' में 'त्र्यक्षरी' मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—

अधरो बिन्दुमानाद्यं, ब्रह्मेन्द्रस्थः शशि-युतः द्वितीयं । भृगु-सर्गाढ्यो मनुस्तार्तो समीरितः ।।
एषा बालेति विख्याता त्रैलोक्य-वश-कारिणी ।

अर्थात्—अधर (ऐ-कार) विन्दु-योग द्वारा प्रथम वीज **'ऐं'** होता है। ब्रह्म (क) के द्वारा इन्द्र (ल) से ऊपर शशि (ई) से योग करके विन्दु देने पर **'क्लीं'** द्वितीय बीज होता है। भृगु (स) से मनु (औ) से योग करके विसर्ग देने पर तृतीय वीज **'सौः'** होता है। यह त्रैलोक्य - वश - कारिणी बाला विद्या विख्यात है।

'ज्ञानार्णव तन्त्र' में इस 'त्र्यक्षरी मन्त्र' का उद्धार इस प्रकार दिया है—

सूर्य-स्वरं समुच्चार्य विन्दु-नाद - कलान्वितं। स्वरान्त - पृथिवी - संस्थं तूर्य-स्वर - समन्वितम् ॥
विन्दु - नाद - कला-क्रान्तं सर्ग-वान् भृगुरव्ययः। शक्र - स्वर - समायुक्ता विद्येयं त्र्यक्षरी मता ॥

अर्थात्—सूर्याक्षर, द्वादश स्वर 'ऐ'-कार विन्दु-युक्त प्रथम वीज **'ऐं'** है। स्वर-वर्ण के परवर्ती वर्ण 'क'-कार में पृथ्वी (ल) का योग करके 'ई' और विन्दु देने पर द्वितीय वीज **'क्लीं'** होता है। शक्र स्वर 'औ'-कार, भृगु (स) और विन्दु एवं विसर्ग के देने पर **'सौः'** होता है। अर्थात् **'ऐं क्लीं सौः'** इस 'त्र्यक्षर मन्त्र' से भी त्रिपुरा बाला की आराधना की जाती है। विसर्ग और विन्दु - संयुक्त यह 'त्र्यक्षरी मन्त्र' 'शाप-ग्रस्त' है।

'त्रिपुरा-सार-समुच्चय' में बाला माता के मूल-मन्त्र 'त्र्यक्षरी' के विषय में इस प्रकार लिखा है—

अथ त्रि - लोकार्चित - शासनाया, वक्ष्यामि बीज - त्रयमम्बिकायाः।
गोप्तव्यमेतत् कुल - धर्मविद्भिरमुष्य-हेतोर्निज - सिद्धये च ॥१

अर्थात् तीनों लोकों द्वारा अर्चिता शासिका के तीनों वीजों को बताऊँगा। कुल-धर्म के जानने-वालों को कुल-रक्षा एवं अभीष्ट-सिद्धि के लिए उन्हें गुप्त रखना चाहिए ॥१

कान्तादि-भूत-पदगं क-गतार्द्ध-चन्द्रम्, दन्तान्त-पूर्व-जलधि-स्थित-वर्ण-युक्तम्।
एतज्जपन् नर-वरो भुवि वाग्भवाख्यं, वाचां सुधा-रस-मुचां लभते स सिद्धिम् ॥२

पहले वीज का उद्धार करते हैं**'—कान्तादि-भूत-पदगं'** अर्थात् ककार अन्त में है जिसके, उस विसर्ग 'अः' का आदि-भूत पद = 'अ'। **'दन्तान्त-पूर्व'** अर्थात् 'दन्त' = ओ, उसके अन्त में आनेवाला 'औ', उससे पहले— **'जलधि-स्थित-वर्ण'** अर्थात् विलोम क्रम से चौथे स्थानवाला अक्षर—'ए'। इन 'अ' और 'ए' के मिलने से बना 'ऐ', उसे **'क-गतार्द्ध-चन्द्रं'** अर्थात् सिर पर अनुस्वार युक्त करने से **'वाग्भव'** नामक बीज **'ऐं'** प्रस्तुत होता है, जिसे जपता हुआ श्रेष्ठ मनुष्य पृथ्वी पर अमृत रस बहानेवाली वाणी से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है ॥२

कान्तान्तं कुल - पूर्व - पञ्चम - युतं नेत्रान्त - दन्तान्वितम्।
कामाख्यं गदितं जपन् मनुरयं साक्षाज्जगत्-क्षोभ - कृत् ॥३

दूसरे वीज का उद्धार करते हैं—**'कान्तान्तं'** अर्थात् 'क' = विन्दु या 'अं' उसके अन्त में आने-वाला 'अः' और उसके बाद का अक्षर **'क'**, **'कुल-पूर्व-पञ्चम-युतं'** अर्थात् 'कुल' या सकार से पहले विलोम-क्रम से पाँचवें स्थान पर आनेवाला अक्षर 'ल' से युक्त = **'क्ल'**। **'नेत्रान्त-दन्तान्वितं'** अर्थात् 'नेत्र' या 'इ' के अन्त में आनेवाला स्वर 'ई', 'दन्त' या अनुस्वार से युक्त उसमें जोड़ें, तो 'काम' नामक यह मन्त्र **'क्लीं'** जपने से सारा संसार प्रत्यक्ष रूप से विचलित हो उठता है ॥३

दन्तान्तेन युतं स - दन्ति - सकलं सम्मोहनाख्यं कुलम्।
सिद्धयत्यस्य गुणाष्टकं खचरता - सिद्धिश्च नित्यं जपात् ॥४

तीसरे वीज का उद्धार करते हैं—**'दन्तान्त'** अर्थात् 'औ' से युक्त दन्ती 'स' = 'सौ' को **'सकल'** अर्थात् विसर्ग-सहित—**'सौः'** का सदा जप करने से अष्ट-सिद्धि और खेचरी-सिद्धि प्राप्त होती है ॥४

ऋषिर्दक्षिणामूर्ति-संज्ञो महात्मा, भवेच्छन्द एतस्य मन्त्रस्य पंक्तिः ।
सरस्वत्यचिन्त्य-प्रभावा प्रदिष्टा, बुधैर्देवता देव-वृन्दार्चिताङ्घ्रीः ।।
अमुष्य मन्त्रस्य रदान्त - युक्तम्, बीजं स - दण्डं नकुलीश - पूर्वम् ।
शक्तिस्तु साखण्डल - कर्ण - पूर्व - सहार्ध-जैवातृकमाननान्तम् ।।५

उक्त त्र्यक्षर मन्त्र के ऋषि आदि बताते हैं—इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति नामक महात्मा हैं। छन्द पंक्ति है । इस मन्त्र का वीज **'रद'** या 'ओ' के अन्त में आनेवाले स्वर 'औ' से युक्त **'नकुलीश'** या 'ह्' से पूर्व आनेवाले व्यञ्जन 'ल' अर्थात् **'सौ'** को **'दन्त'** या अनुस्वार लगाने से **'सौं'** बनता है । इस मन्त्र की शक्ति **'आखण्डल-कर्ण-पूर्व'** अर्थात् 'ल' में 'ई' को **'अर्द्ध-जैवातृक'** या 'अर्द्ध-चन्द्र' के साथ **'आननान्त'** या 'क' में लगाने से **'क्लीं'** वनता है । इस मन्त्र का वर्ण **'शुक्ल'** है और स्वर **'गान्धार'** है ।।५

उक्त 'त्र्यक्षरी मन्त्र' का माहात्म्य लिखते हुए 'मन्त्र - महोदधि'-कार कहते हैं कि इस 'त्र्यक्षरी मन्त्र' के जपने से उपासक विद्या में देव-गुरु 'वृहस्पति' के समान विद्वान् और धन-धान्य-सम्पत्ति में 'कुबेर' के समान हो जाता है ।

ख–'त्र्यक्षरी मन्त्र' के प्रत्येक वीज की साधना

'त्र्यक्षरी मन्त्र' के प्रत्येक वीज को 'एकाक्षर मन्त्र' मानकर भी उपासना की जाती है । तीनों बीजाक्षर-मन्त्रों के ध्यान और उपासना-विधि निम्न प्रकार है—

'ऐं' का ध्यान : **विद्याक्ष-माला-सुकपाल-मुद्रा-राजत्-करां कुन्द - समान - कान्तिम् ।**
मुक्ता-फलालंकृति-शोभिताङ्गीं, बालां स्मरेद् वाङ्मय-सिद्धि-हेतोः ।।

ध्यात्वैवं वाग्भवं लक्ष-त्रयं शुक्लाम्बरावृतः ।
शुक्ल- चन्दन - लिप्ताङ्गो मौक्तिकाभरणान्वितः ।।
जपित्वा तद्दशांशेन पालाश - कुसुमैर्नवैः ।
जुहुयात् मधुराक्तैर्यः स कविर्युवती - प्रियः ।।

प्रथम वीज की उपासना हेतु उपासक को शुक्ल वस्त्र धारण कर, शुक्ल चन्दन और मोतियों के आभरणों से विभूषित होकर, भगवती बाला का उक्त प्रकार ध्यान कर प्रथम वाग्-भव बीज **'ऐं'** का तीन लाख जप करना चाहिए । जप के बाद मधु-युक्त पलाश (ढाक) पुष्पों से दशांश हवन करना चाहिए । जो ऐसा करता है, वह कवि और वनिता-प्रिय वनता है ।

क्लीं का ध्यान : **भजेत् कल्प-वृक्षाध उद्दीप्त - रत्नासने, सन्निषण्णां मदाघूर्णिताक्षीम् ।**
करैर्बीज - पूरं कपालेषु - चापं, स - पाशांकुशां रक्त - वर्णं दधानाम् ।।

ध्यात्वा देवीं जपेल्लक्ष-त्रयं यो मध्य-वीजकम् ।
रक्त - वस्त्रावृतो रक्त-भूषणो रक्त-लेपनः ।।
दशांशं मालती-पुष्पैश्चन्द्र - चन्दन - लोलितैः ।
जुहुयात्तस्य वश्याः स्युस्त्रि-लोक-जनताः क्षणात् ।।

द्वितीय वीज की उपासना हेतु उपासक को रक्त वस्त्र पहन कर, रक्त-चन्दन और रक्त-पुष्पों से सु-सज्जित होकर, भगवती बाला का उक्त प्रकार का ध्यान कर द्वितीय काम-वीज(**क्लीं**) का तीन लाख जप

करना चाहिए। जप के बाद कर्पूर और चन्दन से मिश्रित मालती के पुष्पों से दशांश हवन करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह तीनों लोकों के लोगों को वश में कर लेता है।

'सौः' का ध्यान : **व्याख्यान - मुद्रामृत - कुम्भ - विद्यामक्ष - स्रजं सन्दधतीं कराग्रैः।**
चिद्-रूपिणीं शारद-चन्द्र-कान्ति, बालां स्मरेन्मौक्तिक-भूषिताङ्गीम्॥
ध्यात्वैवं शक्ति-बीजं च जपेल्लक्ष-त्रयं सुधीः।
सित-वस्त्रानुलेपाढ्यामात्मनं देवतां स्मरेत्॥
मालती - कुसुमैर्हुत्वा चन्दनाक्तैर्दशांशतः।
लक्ष्मीर्विद्या-सुकीर्ति-नामाधारो जायते चिरात्॥

तृतीय वीज की उपासना हेतु उपासक को शुभ्र-वस्त्र पहन कर, शुक्ल चन्दन, माला से विभूषित होकर, भगवती बाला का उक्त प्रकार ध्यान कर तृतीय वीज (सौः) का तीन लाख जप करना चाहिए। जप के बाद चन्दन-मिश्रित मालती पुष्पों से दशांश हवन करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह चिर-काल तक संसार में लक्ष्मी, विद्या और कीर्ति का भाजन बन जाता है।

ग—पुरश्चरण

बाला त्रिपुर-सुन्दरी के 'त्र्यक्षरी मन्त्र' का पुरश्चरण करने के लिए तीन लाख जप करना चाहिए। जप के बाद, जप का दशांश हवन किंशुक पुष्प (ढाक के फूल) अथवा रक्त करवीर (लाल कनेर) के फूलों को मधु में मिलाकर करना चाहिए। यथा—

लक्ष-मयं जपेन्मन्त्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः। पुष्पैर्हयारिजैर्वाऽपि जुहुयान्मधुरान्वितैः॥

घ—शापोद्धार, उत्कीलन तथा दीपन

भगवती बाला की यह 'त्र्यक्षरी विद्या' भगवान् सदा-शिव से कीलित की गई है। अतः इसका शापोद्धार और उत्कीलन कर तथा बीजाक्षरों का दीपन कर मन्त्र का जप करना चाहिए। शापोद्धार, उत्कीलन एवं दीपन की विधि इस प्रकार है—

योजयेद् आदिमे वीजे वाराह-भृगु-पावकान्।
मध्यमादौ नभो हंसो मध्यमान्ते तु पावकम्॥
आदाबन्ते च तार्तीये क्रमाद्वै धूम-केतनम्।
एवं जप्त्वा शतं विद्या शाप-हीना फल-प्रदा॥

बाला त्रिपुर-सुन्दरी के प्रथम वीज के पहले वाराह = 'ह्'-कार, भृगु = 'स'-कार, पावक = 'र'-कार जोड़कर उसे भैरवी-वीज (**ह्स्रैं**) बनाए। द्वितीय काम-वीज के पूर्व भी नभः = 'ह्'-कार, हंसः = 'स'-कार जोड़कर द्वितीय भैरवी-वीज (**ह्स्क्लीं**) बना ले। पुनः तृतीय शक्ति-बीज के आगे भैरवी - वीज जोड़े (**ह्स्रौः**)। इस प्रकार 'त्र्यक्षरी मन्त्र' के तीनों वाला-वीजों के आगे भैरवी के वीज लगाकर मन्त्र वनाना चाहिए। इस मन्त्र का एक सौ बार जप करने से 'बाला त्र्यक्षरी विद्या' शाप - हीना होकर फल - प्रदा होती है।

'शाप-मोचन' का द्वितीय प्रकार भी है। यथा—दो बार 'वाग्'-बीज, पुनः 'शक्ति'-बीज, पुनः 'काम'-बीज दो बार, फिर 'वाग्-वीज', फिर दो बार 'शक्ति'-वीज और अन्त में 'काम'-बीज लगाने से 'बाला विद्या' का 'नवाक्षर मन्त्र' (**ऐं ऐं सौः क्लीं क्लीं ऐं सौः सौः क्लीं**) वन जाता है। इस 'नवाक्षर मन्त्र' का १०८ बार (अष्टोत्तर-शत) जप करने से 'शाप' की निवृत्ति हो जाती है। यथा—

आद्यमाद्यश्च तार्तीयं कामः कामोऽथ वाग्भवम् ।
अन्त्यमन्त्यमनङ्गश्च नवार्णः कीर्तितो मनुः ।।
जप्तोऽयं शतधा शापं बालाया विनिवर्तते ।

'चेतनी' और 'आह्लादिनी' मन्त्रों के जपने से बाला 'त्र्यक्षरी विद्या' का निष्कीलन हो जाता है ।

'चेतनी-मन्त्र' में तीन स्वर हैं अर्थात् अधरः = **ऐं** वाग्-वीज, शान्तिः = 'ई'-कार अनुस्वार के साथ, अनुग्रहः = सानुस्वार 'औ'-कार । इस 'चेतनी-मन्त्र' (**ऐं ईं औं**) के सौ बार जपने से 'निष्कीलन' होता है ।

'काम'-बीज के आदि में तार = 'ॐ'-कार और अन्त में हृदय = 'नमः' जोड़ने से 'आह्लादिनी-मन्त्र' (ॐ **क्लीं नमः**) बन जाता है । इस मन्त्र का शत-बार जप करने से निष्कीलन हो जाता है । यथा—

चेतना ह्लादिनी मन्त्रौ जप्तौ निष्कीलिता करौ ।
त्रि-स्वराश्चेतनी मन्त्रोऽधरः शान्तिरनुग्रहः ।।
तारादि-हृदयान्तः स्यात् काम आह्लादिनी मनुः ।

'त्र्यक्षरी विद्या' के तीनों वीजों का दीपन तीन मन्त्रों से होता है । प्रथम 'वाग' - वीज का 'दीपनी मन्त्र'—'ॐ **वद वद वाग्वादिनि ऐं**' है । द्वितीय 'काम'-वीज का—'ॐ **क्लिन्ने क्लेदिनि महा-क्षोभं कुरु क्लीं**' है तथा तृतीय 'शक्ति'-बीज का 'दीपनी मन्त्र'—'**ॐ सौः मोक्षं कुरु**' है । इन 'दीपनी मन्त्रों' का जप किए बिना बाला 'त्र्यक्षरी विद्या' का मन्त्र फल-प्रद नहीं होता । 'त्र्यक्षरी विद्या' के इस रहस्य को कृतघ्न और शठ पुरुषों को कभी न बताना चाहिए । यथा—

तथा त्रयाणां बीजानां दीपनैर्मनुभिस्त्रिभिः ।
सु-दीप्तानि विधायादौ जपेत्तानीष्ट-सिद्धये ।।
वद युग्मं सदीर्घाम्बु स्मृति बाला वनन्तगौ ।
सत्यः स-नेत्रो नस्तादृक् वाङ् नवार्णाद्य-दीपिनी ।।
क्लिन्ने क्लेदिनि वैकुण्ठो दीर्घ-खं सद्यगोऽन्तिमः ।
निद्रा स-चन्द्रा कुर्वन्ता शिवार्णा मध्य-दीपिनी ।।
तारो मोक्षं च कुर्वन्ता पञ्चार्णाऽन्त्यस्य दीपिनी ।
दीपिनीमन्तरा बालाऽऽराधिताऽपि न सिद्धिदा ।।
इदं रहस्यं नाख्येयं कृतघ्न-कितवे शठे ।
परीक्षिताय दातव्यं अन्यथा दातृ-दोषदम् ।।

बाला 'त्र्यक्षरी मन्त्र' की गुरु-परम्परा निम्न प्रकार है—

दिव्यौघ गुरु—१ प्रकाशानन्द - नाथ, २ परमेशानन्द - नाथ, ३ पर - शिवानन्द - नाथ, ४ कामेश्वरानन्द-नाथ, ५ मोक्षानन्द-नाथ, ६ कामानन्द-नाथ और ७ अमृतानन्द-नाथ ।

सिद्धौघ गुरु—१ ईशानानन्द-नाथ, २ तत्पुरुषानन्द-नाथ, ३ अघोरानन्द-नाथ, ४ वाम-देवानन्द-नाथ और ५ सद्योजातानन्द-नाथ ।

मानवौघ गुरु—१ गगनानन्द-नाथ, २ विश्वानन्द-नाथ, ३ विमलानन्द-नाथ, ४ मदनानन्द-नाथ, ५ आत्मानन्द-नाथ, ६ प्रियानन्द-नाथ ।

गुरु-चतुष्टय—१ गुरु, २ परम गुरु, ३ परात्पर गुरु और ४ परमेष्ठि - गुरु (अपने गुरु - देव के सम्प्रदायानुसार) ।

च–हवन

बाला 'त्र्यक्षरी मन्त्र' की साधना में प्रतिदिन त्रि-मधु-युक्त निर्दोष रक्त 'पद्म' द्वारा होम कर ब्राह्मण साधकों को भोजन कराए। सु-वासिनी स्त्रियों को जगदम्बा-स्वरूप समझते हुए उनका पूजन कर उन्हें प्रसन्न करे। इस प्रकार होमादि के समाप्त होने पर अपने गुरु-देव को धन-धान्यादि द्वारा सन्तुष्ट करे।

उक्त विधि से अनुष्ठान करने पर जगत् वशीभूत होता है। साधक पर लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और वह सभी प्रकार के वैभव से युक्त होता है, इसमें संशय नहीं।

त्रि-मधु-समन्वित रक्त 'उत्पल', रक्त-वर्ण 'करवीर' पुष्प अथवा घृताक्त 'परमान्न' द्वारा होम करके अखिल जगत् को वशीभूत किया जा सकता है। 'पलाश पुष्प' द्वारा होम करने पर साधक 'वाक्'-सिद्धि को प्राप्त करता है। 'कर्पूर' और 'अगरु'- संयुक्त 'गुग्गुल' द्वारा होम करने पर साधक 'दिव्य-ज्ञान' को प्राप्त करता है, कवित्व-शक्ति उसमें उत्पन्न हो जाती है। 'दुग्ध' के साथ 'गुडूची-खण्ड' द्वारा होम करने पर सकल प्रकार की अप-मृत्यु दूर होती है। 'दूर्वा' द्वारा त्रि-दिन हवन करने पर दीर्घ जीवन का लाभ होता है। 'गिरिकर्णि पुष्प' द्वारा 'ब्राह्मण' को, 'कल्लार पुष्प' द्वारा 'राज-वृन्द' को, 'मालती कुसुम' द्वारा 'राज-पुत्र-गण' को, 'पीतझिण्टी पुष्प' द्वारा 'वैश्य-गण' को, 'पाटल पुष्प' द्वारा हवन कर 'शूद्र को वशीभूत किया जा सकता है।

मन्त्र के मध्य में अनुलोम-विलोम से साध्य का नाम युक्त कर मन्त्र का उच्चारण करते हुए त्रि-मधु-समन्वित जाती पुष्प, विल्व पुष्प, जाती-फल, विल्व-फल द्वारा हवन करने पर नर - नारी और नरपति सकल को वश में किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

चन्दनाक्त 'मालती' और 'वकुल' पुष्प द्वारा हवन करने पर साधक एक वर्ष में 'कवित्व-शक्ति' को प्राप्त करता है। त्रि-मधु-युक्त 'विल्व-फल' द्वारा हवन करने पर समस्त लोक का वशीकरण एवं वाञ्छित सम्पदा का लाभ होता है। जो व्यक्ति 'पाटल' पुष्प, 'कुन्द' पुष्प, 'उत्पल', 'नागकेशर', 'चम्पक' द्वारा हवन करता है, वह एक वर्ष में ऐश्वर्य-बल से परिपूर्ण होता है। 'घृताक्त अन्न' द्वारा हवन करने पर अन्न-समृद्धि का लाभ किया जा सकता है। जो व्यक्ति इन्द्रिय-संयम करके 'कस्तूरी' और 'कुंकुम' एकत्र करके कर्पूर द्वारा हवन करता है, वह कन्दर्प की भी अपेक्षा अधिक सौन्दर्य - सम्पन्न होता है। जो साधक घृत, दग्धि, दुग्ध-मिश्रित 'लाजा' द्वारा हवन करता है, वह निखिल रोग से मुक्त होकर शत वर्ष जीवित रहता है।

हवन के पश्चात् अर्द्ध-भाग चन्दन, चतुर्थांश कुंकुम एवं गोरोचन—इन तीन वस्तुओं को शीतल जल से मिलाकर उससे ललाट में 'तिलक' धारण करने से सारा विश्व वशीभूत होता है। इसी प्रकार कर्पूर, गाँठियाला और कृष्ण-शटी सम परिमाण में लेकर, उसके चार भाग जटामांसी, चार भाग गोरो-चन, सात भाग कुंकुम, दो भाग चन्दन—ये सब वस्तुएँ मिश्रित करके शीतल जल में किसी कन्या से पिसवा ले। इस द्रव्य को मन्त्र-पूत कर उससे 'तिलक' करे, तो सभी प्राणी वशीभूत होते हैं।

श्रीकालिदास-सुत दशमी-गर्भज श्रीयोगानन्द

विरचित

श्रीबाला त्रिपुरा महिम्न स्तोत्रम्

(हिन्दी-अर्थ-सहित)

प्रबद्धोऽयं वत्सो जननि ! तव नागेन्द्र-चरणे ।
स एवाऽयं नागो व्रजति, तरसा कण्टक-वने ।।
व्रणास्तैः सम्भूता रुधिर-वमना दंश-वशगा ।
इमां सूनोर्दृष्ट्वा किमु हरसि न ग्रन्थिमभितः ।।१

हे माता ! तुम्हारा पुत्र हाथी के पैर पर बँधा हुआ है और वह हाथी वेग के साथ काँटों के वन में घुस गया है । अतएव काँटों से विध जाने के कारण बालक के शरीर से खून बह रहा है और उस रक्त को देखकर घावों के ऊपर वन-मक्षिकाएँ रक्त-पान के लिए आ बैठी हैं और उसे काट रही हैं । तुम अपने पुत्र की इस दुःखितावस्था को देखकर उसे हाथी के पैर से क्यों नहीं मुक्त कर देतीं ?

यहाँ हाथी 'महा-मोह' का द्योतक है और उसमें फँसा हुआ अज्ञानी बालक 'जीव' है । काँटे, घाव, खून और वन-मक्षिकाएँ 'सांसारिक यातनाओं' की सूचक हैं । इन दुःखों से मुक्ति दिलानेवाली केवल जगदम्बा बाला हैं, जिसकी माया ने जीव को मोह-पाश में फँसा रखा है ।।१

ज्वलन्तं सम्पश्यन् जनक-जननी - दृष्टि-विषये ।
हुताशं क्रीड़ायै व्यवहरति बालो यदि भवे ।।
दया-भावाऽशोधी हुत - भुगशित स प्रलपति ।
तदा शक्तेर्दोषं जननि ! मनुजः कस्य कथयेत् ।।२

हे जननि ! इस संसार में माता-पिता के सामने जलती हुई आग को देखकर यदि बालक अपने खेल के लिए उसे पकड़ लेता है और जलने लगता है तथा जलने पर दया-भाव के ज्ञान से विहीन वह दुःखितावस्था में चिल्लाता रहता है, तो बतलाओ, दर्शक मनुष्य इसमें किसकी शक्ति का दोष मानेगा ? माता-पिता की शक्ति का अथवा बालक की शक्ति का ? ।।२

ततः क्रीड़ाऽऽसक्तः प्रथम-वयसि ज्ञान-विरतो ।
युवत्वे सम्प्राप्ते युवति-विषयाऽऽसक्त-हृदयः ।।
सुतानामुत्पत्तिं भजति, मनसा वृत्ति-बलतः ।
प्रपञ्चोऽयं नित्यस्तव, जननि ! दुर्वार उदितः ।।३

हे माता ! यह जीव बाल्यावस्था में ज्ञान-रहित होकर अपने खेल में निमग्न रहता है । युवाऽवस्था में स्त्री के साथ विषय-भोग में आसक्त होकर पुत्रों के पैदा करने में निर्जीव बन जाता है अतएव तुम्हारा यह सांसारिक प्रपञ्च इस ससार में नित्य और दुर्वार कहा गया है । अर्थात् इस प्रपञ्च से संसार में कोई भी नहीं बच सकता ।।३

क्व कर्मत्व-ज्ञानं स्पृशति, जननि ! प्रागवसरे ।
समास्नाते मूत्रैरधिगत - पुरीषोत्सव - गृहे ।।
महत्त्वे तेनाऽऽसे कथमिह सुकर्माचरण-वान् ।
विकाराप्ते त्वस्मिन् हरति, नहि स प्राप्त-विभवम् ।।४

हे माता ! बाल्यावस्था में मल-मूत्र से सने हुए इस जीव को कर्म करने का ज्ञान छू तक नहीं सकता और बड़े होने पर सत्कर्मों के आचरण से यदि उसको ऐश्वर्य-प्राप्ति हो भी जाती है, तो विकार-पूर्ण शरीर से ऐश्वर्य को त्याग नहीं सकता और उसी में लिप्त रहता है। अतः तुम्हारी माया बड़ी विलक्षण है। इससे कोई छूट नहीं सकता ।।४

प्रसूतीनामेको यदपि, सुधियां नीच-पथगः ।
भवेत् सूनुस्तस्य त्यजति, जनकः स्नेहमतुलम् ।।
प्रसू - प्रीतेस्तेषु कुमति - सुमतिष्वेव समता ।
यतस्तेषां साम्यं जनन - समयस्यापि सदृशम् ।।५

हे माता ! यदि अनेक बुद्धिमान् पुत्रों में से एक भी पुत्र कु-मार्ग पर चलनेवाला हो जाता है, तो पिता उसको बिलकुल प्यार नहीं करता किन्तु माता 'सु-पुत्र' और 'कु-पुत्र' दोनों पर समान स्नेह करती है और किसी पर कम तथा किसी पर अधिक स्नेह नहीं दर्शाती, क्योंकि 'सपूत' हो या 'कपूत' दोनों को उसने समानता से ही जन्म दिया है ।।५

जरायौ मे जाता नग-पति-सुतेऽनेक-विधिना ।
निवासास्त्वत्-पादाभ्यसन-विधि-शून्येन फलिताः ।।
तदुत्पीडा-ग्रस्तः प्रलपित-मनाः पङ्कज-पदम् ।
त्वदीयं ध्यायामि क्षिति-निरत-चित्तस्य विरतेः ।।६

हे गिरि-राज-पुत्रि ! इस संसार में तुम्हारे चरणों की भक्ति से रहित मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। अब जन्म-मरण-पीड़ा से ग्रस्त होकर, मैं इस संसार के आवागमन से ऊब गया हूँ। अतएव इस समय तुम्हारे चरण-कमलों का ध्यान करता हूँ, अर्थात् अब तुम्हारी शरण में आया हूँ ।।६

महत्त्वं तेऽपर्णे ! चरण - नलिनोर्देव - गुरुभि-
रसाध्यं सर्वज्ञैरपि निगदितं मातरविदः ।
मनीषा चैतस्य कथमनुचरेन्मोक्ष-पदवीम् ।
त्वदङ्घ्रि-द्वन्द्वस्य स्तुतिममर-वाक्याश्रित-वतीम् ।।७

हे अपर्णे (पर्वत-राज-पुत्रि) ! तुम्हारे चरणों के महत्त्व को बड़े-बड़े सर्वज्ञ देवताओं ने भी असाध्य बताया है। अतएव उन बड़े-बड़े देवताओं द्वारा की गई, तुम्हारे पद-पङ्कजों की स्तुति को न जाननेवाला यह चरण-सेवक मोक्ष-पदवी को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? ।।७

निषिध्यादौ रूपं तव, जननि ! वेदान्त-निरताः ।
परे प्राहुर्मातर्भव-विधि-निदानं तव वपुः ॥
विधाता भूतेशः खग-पति-पतिश्चापि विमले !
भवत्याः सञ्जाता नग-पति-सुते ! गायन्ति परः ॥८

हे भगवति ! वेदान्ती लोग कहते हैं कि तुम्हारा रुप नहीं है, दूसरे लोग मानते हैं कि इस संसार का कारण एक-मात्र तुम्हारा शरीर है। हे गिरि-राज-पुत्रि ! कोई कहते हैं कि सृष्टि, स्थिति और प्रलय के करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तुमसे ही पैदा हुए हैं। अतः तुम्हीं इस संसार की पैदा करनेवाली हो ॥८

इदानीं त्वां स्तोतुं कथमनुभवेयं त्रिनयने !
विभीतात्मा-वृत्तौ बहु-विध-रुचि-ग्रस्त-हृदये ॥
स्थिता बुद्ध्याकारा त्वमसि मनुजानां मनसि वै ।
अतो निन्द्य-स्तोत्रे तव जननि ! यत्नोऽयमपि मे ॥६

हे त्रि-नयने ! आत्म-वृत्ति से भयभीत और अनेक प्रकार की वासनाओं से परिपूर्ण इस हृदय से मैं तुम्हारी स्तुति करने का अनुभव किस प्रकार करूँ ? यतः तुम तो मनुष्य-मात्र के हृदय में बुद्धि - रूपेण विराजमान हो रही हो। अतः तुम मेरे हृदय को जानती हो। अतएवतुम्हारी स्तुति करने में मैं भी प्रयत्न करता हूँ, चाहे मेरी की हुई स्तुति को लोग निन्दनीय ही क्यों न मानें ॥६

यदीयैक्यस्यैवाऽप्यनुसरणमिच्छन्ति बहवो,
विनिन्द्यानुग्राह्यं नग-पति-सुते ! तस्य सहसा ।
कथं ते तद्-रूपा इति मम मनोऽनिश्चित-परम्,
यतोऽद्वैतं प्राहुः श्रुति-विहित-मार्गं श्रुति-विदः ॥१०

हे गिरि-राज-किशोरी ! जिस पर-ब्रह्म को बहुत से लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर उसका अनुसरण करना चाहते हैं, यह बिलकुल ही अनुचित है। अतएव मेरा मन इस बात का निश्चय करने को दृढ़ नहीं है कि वे लोग ब्रह्म-स्वरूप बन जाते हैं क्योंकि वेदों के विद्वान् लोग वेद-विहित मार्ग को अद्वैत बतलाते हैं ॥१०

विधाता तार्क्ष्येशो विष-धर-पतिः काल-कलनः,
त्रिकाल-ज्ञातारः कमल-जनि-पुत्राश्च मघवा ।
स्थिताश्चान्ये देवाः सदसि खलु दक्षस्य बहवो,
विधातुः सत्रस्य क्षिति-धर-सुते ! तस्य सहसा ॥११
शिरश्छेदो जातस्तदपि शिव-शूलेन महता,
तिरस्कारस्यापि प्रति-हत-गिरा किन्तु लभते ।

प्रलम्बित्वात् सत्यामृतमिति पद-प्राप्ति-विषयाम्,
किमन्यूनां मत्वा सकल - भुवनोदार - रचनाम् ॥१२

हे गिरि-नन्दिनि ! दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और भूत, भविष्य, वर्तमान की बातों को जाननेवाले, ब्रह्माजी के मानस पुत्र सप्त-ऋषि तथा अन्य सब देवताओं के साथ इन्द्र-देव विराजमान थे। इन सबकी सभा के बीच में दक्ष प्रजापति सुशोभित हो रहे थे। सब देवताओं के सम्मुख भगवान् सदा-शिव ने रुद्र-रूप धारण कर अपने निन्दक दक्ष प्रजापति का शिर अपने त्रिशूल से काट गिराया। यह ठीक ही है कि दक्ष प्रजापति ने शिवजी के तिरस्कार करने का बुरा फल प्राप्त कर लिया ॥११-१२

त्वदीयं पादाब्जं हृदय-कमले यस्य रमते।
स एवं ते रूपं मुनि-वर-चय-ध्यान-विषयम् ॥
निदानं दीक्षाया विधि-हरि-शिवानां च गिरिजे !
उपेतं तल्लिङ्गैरनुवदति ते भक्ति - निरतः ॥१३

हे भगवति गिरिजे ! तुम्हारे जिस भक्त का मन तुम्हारे चरण-कमलों के ध्यान में दिन - रात लगा रहता है, वही भक्त बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के ध्यान का विषय और ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—तीनों देवों को अपने - अपने कार्य में लगानेवाले तेरे स्वरूप का कुछ वर्णन करने में समर्थ हो सकता है। मैं तो तेरा एक सामान्य सेवक हूँ, अतः तेरी वर्णना में अपने को सुतरां असमर्थ समझता हूँ ॥१३

सदा सेव्यं मातश्चरण-युगलं ब्रह्म-पथगै——
स्त्वदीयं सेवेऽहं रचित-मणि-पीठेऽर्पित-तलम् ॥
नख-ज्योत्स्नाऽऽक्रान्ते सुर-पति-किरीटानुकरणे ।
भवाऽऽवृत्ति-ध्वंसं प्रणमित-तरं देव-गुरुभिः ॥१४

हे माता ! मुक्ति-मार्ग में विचरण करनेवाले (मुमुक्षु) लोग सदा तुम्हारे जिस चरण - युगल की सेवा करते हैं और जो मणि-मय सिंहासन में विराजमान अपने नखों की कान्ति से देव-राज इन्द्र के मुकुट को लज्जित करता है और जो संसार के आवागमन से छुड़ानेवाले हैं तथा जिसको ब्रह्मा, विष्णु आदि बड़े-बड़े देवता प्रणाम करते हैं, मैं तुम्हारे उस चरण-युगल की सेवा करता हूँ ॥१४

चिदानन्दाकारे ! तव चरण - सेवाऽमृत-रसम् ।
पुरश्चारी धर्मः पिवति खलु लोकेऽपि निरतः ॥
समर्थो देवेन्द्राऽऽस्पद - गमन - दाने दुरितहा ।
भवत्या निर्दिष्टो भ्रमर-समया भ्रू-लतिकया ॥१५

हे चिदानन्द-स्वरूपिणि (ज्ञान-स्वरूपिणी और आनन्द-स्वरूपिणी), माता ! इस संसार में सर्वदा निरत (लीन) यह धर्म (संसार को धारण करनेवाला) जो कि देवेन्द्र की प्रतिष्ठा (इन्द्रासन) देने में समर्थ है तथा संसार के पापों का नाशक है, वह भ्रमरों के समान मेचक (कृष्ण-वर्ण) तुम्हारी भ्रू-लतिका के इशारे से (भौहों के इशारे से) तुम्हारे चरण-सेवाऽमृत-रस का पान करता है ॥१५

विभूतिं त्वद्भक्तस्तव चरण-पंकेरुह-भवाम् ।
दुरापा मन्यैश्च स्वपन-वसु-गर्भां त्रि-नयने !
सुरक्ष्यां विश्वेशैः सुर-हृदय-तात्पाप-नुदयाम् ।
विभुञ्जानः कामं भवति मनुजैर्वन्द्य-चरणः ।।१६

हे माता ! तुम्हारा सेवक तुम्हारे चरणों की सेवा से ऐसे ऐश्वर्य का भोग करता है, जो किसी को प्राप्त न हुआ हो और जिसको देखकर देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं और जिस ऐश्वर्य की रक्षा में बड़े-बडे देवता सतत लगे रहते हैं, अतएव उसके अद्‌भुत ऐश्वर्य-भोग को देखकर मनुष्य उसके (तुम्हारे सेवक की) चरणों की वन्दना करते रहते हैं ।।१६

भ्रमन्तालि - द्वन्द्वाऽमृत-जनि - मुखीनां तव जनः,
सुधा-वीची-वाचां मृग-पति-कटीनां प्रति-दिनम् ।
घन - प्रायाकारस्तन - युग - धराणमविकलम् ,
विलासी नारीणां करि-वर-गतीनां भवति सः ।। १७

हे माता ! तुम्हारे चरण-कमलों का सेवक इस संसार में सुन्दर सरोज - मुखी यद्वा चन्द्र-मुखी, अमृत-रस-मधुर-भाषिणी, सिंह-कटी और घन-स्तन-युगल-धारिणी विलासिनियों (नारियों) के साथ सदैव विलास करता रहता है ।।१७

भवानि ! त्वत्-तूर्यास्पदमखिल - वेदैर्विरचितम्,
तदुद्‌भूतैरुद्धं ध्वनिभिरति-सूक्ष्मैश्च नितराम् ।
अनेकत्वैकत्वानवगम - तिरस्कार - विषयम् ,
विशुद्धानन्दार्णे अभि-निवेशति ध्यान-निरतः ।।१८

हे भवानि ! समस्त वेदों द्वारा निरूपित तुम्हारा जो तुरीय धाम है, वह उससे समुद्‌भूत सूक्ष्माति-सूक्ष्म ध्वनियों से अवरुद्ध है, तथा वहाँ एकत्व और अनेकत्व का भी पता नहीं लग सकता । अतएव मेरा मन तुम्हारे ध्यान में तत्पर होकर विशुद्धानन्द-सागर में निमग्न रहता है ।।१८

मुकुन्द - ब्रह्मेन्द्र - त्रिनयन-सुराणां फल-वताम्,
भवत्-पूजा मातस्त्रिगुण-विहिता स्वातम-सदृशी ।
त्वदुद्देश्ये यश्चेद्'भवति ननु सत्त्व-प्रसविका—
मतस्त्वां कल्याणीं प्रणिगदति कश्चित् तव जनः ।।१९

हे माता ! त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और इन्द्र आदि देवताओं ने अपने - अपने अनुरूप तुम्हारी पूजा की है और उसी से सिद्धि को प्राप्त हुए हैं । यह सुनिश्चित है कि जो तुझे अपना लक्ष्य (उद्देश्य) बनाकर तेरी सेवा करता है, उसको तू उसी भाव से सिद्धि प्रदान करती है । अतएव कोई-कोई तेरा सेवक तुझे सत्त्वोत्पादिनी सर्व-जन-कल्याण-कारिणी (कल्याणी) कहता है अर्थात् मानता है ।।१९

विहार-प्रासादस्तव जननि ! पंकेरुह-पदोः,
परिच्छेत्तुं शक्यो विधि-मुर-रिपुभ्यां नहि यतः ।
अतस्त्वां सु-स्नातां त्रिगुण-मलतोऽदृष्ट-वपुषी,
शिवेति त्वत्-सेवी भव-जलधि-तीर्णः शिव-वपुः ।।२०

हे जननि ! तेरे चरण - कमल जिस प्रासाद (महल या मन्दिर—'प्रासादो देव-भूभुजाम्') में निवास करते हैं, उसकी विशालता और तुङ्गता का परिमाण करने में ब्रह्मा और विष्णु भी सुतरां असमर्थ हैं । अतः त्रिगुणात्मक मल से रहित शुद्ध शिव - स्वरूपा तेरी सेवा करनेवाला सेवक (भक्त) इस संसार-सागर से पार होकर शिव-स्वरूप हो जाता है ।।२०

त्रयो ब्रह्माद्यास्ते कथमपि गता ध्वस्त-पशवः,
स्मरन्तस्ते वाणीं सुर-पद-सु-गुप्तां तव पदम् ।
ततो द्वार-स्थायी नव-शिशु-तरस्त्वद् - बल-जयी,
अभूत् प्राहुर्दुर्गे स्व-जन-सुलभां त्वां मुनि-वराः ।।२१

हे दुर्गे ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तेरी वाणी के अनुसार पशु-पाश का समुच्छेदन कर तेरे पद को प्राप्त हुए हैं, किन्तु तेरा यह नव-जात शिशु तेरे शक्ति-वीज का जप करनेवाला अथवा तेरे सामर्थ्य पर निर्भर रहनेवाला तेरे द्वार पर स्थिर हो गया है । अतएव हे माता ! वड़े-बड़े ऋषि - मुनि तुझे स्व-जन-सुलभा कहते हैं अर्थात् तेरे सेवक तुझे बड़ी सरलता से पा जाते हैं ।।२१

समुद्राशी दृक्ते हुत-भुगभिधोऽनन्त-महिमा,
चतुर्लक्षं क्रोशे तमुपरि विभाति ग्रह-पतिः ।
ततोश्चोर्ध्वे चन्द्रोऽमित-गमन-शीलो द्वि-गुणिते,
तृतीयांशस्येयं तव जननि ! मौलेश्च गुरुता ।।२२

हे माता ! अनन्त महिमावाला अग्नि वड़वा-रूप से समुद्र को भीतर-ही-भीतर क्षीण करता रहता है अर्थात् उसके जल को बढ़ने नहीं देता । अतएव उसे मर्यादा पर स्थिर रखता है । अतः समुद्र की सतह से चार लाख कोश दूरी पर (ऊँचाई पर) भगवान् सूर्य-देव विराजमान हैं और उसके ऊपर आठ लाख कोश की दूरी पर अपरिमित गतिवाला चन्द्रमा स्थित है । हे जगज्जननि ! यह केवल आपका ही मुकुट है, जिसने चन्द्रमा को इतने ऊँचे पद पर आरूढ़ किया है । उसकी कला तुम्हारे मुकुट पर विराजमान है, अतः यह उसका ही माहात्म्य है । २२

अहो ! ब्रह्मादीनां वयस उदयास्तौ तव दृशौ,
कटाक्ष-प्रक्षेपोद्गमन-पवनोद्भूत - रथिनौ ।।
विरुद्धांशु - कामं सकल - भुवनाधार-वपुषी,
समुन्नेया दिव्या स्थित-महिम-देहा तव जनैः ।।२३

हे भगवति, हे माता ! तुम्हारे जो सूर्य-चन्द्रात्मक दो नेत्र हैं, ये ब्रह्मा आदि देवताओं की आयु के उदय और अस्त करनेवाले हैं। जिस प्रकार सांसारिक मनुष्यों की आयु की गणना मास, वर्ष आदि सौर-मान अथवा चान्द्र-मान से होती है, उसी प्रकार देवताओं की आयु-गणना भी सूर्य और चन्द्रमा से होती है, अतएव तुम्हारे नेत्र रवि-शशि हैं और तुम्हारे कटाक्ष-निक्षेप की वायु से उनके रथ चलाए जाते हैं और इनकी शीतोष्ण-किरणें सम्पूर्ण भुवनों की आधार हैं। अतः तुम्हारे सेवक तुम्हारी दिव्य महिमा का ध्यान करते रहते हैं ॥२३

विवेकस्ते कोऽयं गिर-पति-सुते ! पाप-मनसाम्,
यम-त्रास-त्राणा भवसि बलतस्तेभ्य इति च ।
अनिच्छद् भूयः श्रेयः सपदि ददसि प्रार्थित इव,
किमन्यत् ते शीलं लघु-जपन-मात्र-प्रमुदितम् ॥२४

हे गिरि-पति-सुते (हे गिरिजे) ! तुम्हारा विवेक अनिवर्चनीय है तथा तुम्हारा स्वभाव बहुत हलका (जरा-सी बात में प्रसन्न होनेवाला) है क्योंकि जिसने जरा-सा भी तुम्हारे मन्त्र का जप कर लिया है, उसे तुम यम-राज के भय से मुक्त कर देती हो तथा इच्छा न करने पर भी उसका मनोऽभिलाष इस प्रकार पूर्ण कर देती हो, जिस प्रकार कोई अति दीन प्रार्थी की अभिलाषा को पूर्ण कर देता है ॥२४

भवत्यङ्घ्रि - द्वन्द्वोद्वहन - गुरु - भारादवनतः ,
मुकुन्दोऽपि श्रान्तो भजति भुजगाधीश-शयनम् ।
यदुद्देश-क्लिष्टो भवति खलु यस्तस्य चरणम्
किमाश्चर्यं ह्येतत् भजति गुरुतेयं समुचिता ॥२५

हे त्रिपुर-सुन्दरि ! भगवान् मुकुन्द (विष्णु) तुम्हारे सिंहासन को उठाने के भार से अत्यन्त थक कर कुछ काल के लिए शेष - शय्या में लेट कर विश्राम करते हैं। संसार में यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति जिस कार्य के करने में क्लेश मानता है, वह पुनः उस काम के करने से मुँह मोड़ता है, किन्तु हे माता ! यह तुम्हारी महिमा का प्रभाव है कि श्री भगवान् विष्णु अपनी थकावट दूर कर पुनः तुम्हारी चरण-शरण में आकर स्व - कार्य में तत्पर हो जाते हैं ॥२५

लये ब्रह्मादीनां त्वयि जल-तरीं केशव-मयीम्,
गृहीत्वा पाणिभ्यां विचरसि महा-सिन्धु-विवरे ।
जगद्-वीजोत्पत्ति-प्रभव-विवरां त्वां सुर-गणाः,
अतः प्रेतारूढा हरि-हृदय-वासेत्यपि जगुः ॥२६

हे भगवति, त्रिपुरे ! प्रलय-काल के अवसर पर ब्रह्मादि देवता सब जब तुम्हारे शरीर में लय हो जाते हैं, उस समय तुम केशव (विष्णु)-मयी नाव में बैठकर प्रलय - कालीन महा - सागर में विचरण करती हो। अतएव सब देवता तुम्हें 'प्रेतारूढ़ा' (विष्णु-रूपी प्रेत पर बैठी हुई) और 'हरि-हृदय-वासा' (हरि के हृदय में निवास करनेवाली) कहते हैं ॥२६

त्वया पूर्वं रम्भासुर-सुत-शिवाऽधोक्षज-गतिः,
कृतो विष्णुर्बध्वा हत इति विचित्रा तव गतिः ।
यम-त्रासी धाता निगम-वदनः काम-वशगः,
अहं वश्या कस्येत्यपि तव मतं ज्ञातमधुना ।।२७

हे माता ! तुमने पूर्व समय में ब्रह्मा-विष्णु-शिव को परास्त करनेवाले 'रम्भ' नामक असुर के पुत्र महिषासुर को मारकर शिव-(मङ्गल)-स्वरूप वैकुण्ठ-पद प्रदान किया है । तुम्हारी गति बड़ी विचित्र है अर्थात् तुम्हारी गति को कोई समझ नहीं पाता । तुमने भगवान् विष्णु को भी मोह-पाश में बाँध डाला और यम-राज को भी भयभीत करनेवाले वेद - मुख ब्रह्मा को भी काम-देव के वशीभूत कर दिया ! इन सब बातों से तुम्हारे मत का पता चल गया कि तुम किसी के वश में नहीं हो, बल्कि ब्रह्मा - विष्णु आदि देव सब तुम्हारे ही अधीन हैं ।।२७

विधेयाधीनैव त्वमसि जनक - प्राङ्गण - मही,
प्रलये प्रावृत्ता स्मर-हर-धनुः स्वेन भुजतः ।
समुत्थायोत्कृष्टं भजन - फल - संशिन्युप-रता,
गृहे यस्य त्वं वै अवतरसि किं दुर्लभ-तरम् ।।२८

हे जगज्जननि ! तुम सर्वदैव अपने भक्तों के आधीन रहती हो । अतएव तुमने महा-राजा जनक को अपना जनक बना कर सीताजी के रूप में उनके प्राङ्गण को लीपने के समय भगवान् त्रिपुरारि (शिव) के धनुष को उठाकर चढ़ाया करती थीं । तुम्हारे इस चरित्र को देखकर ही तुम जैसे शक्ति-शाली भगवान् रामचन्द्र को तुम्हें प्रदान कर अपना जामाता बनाया । महा-राज जनक के लिए श्री भगवान् रामचन्द्र को जामाता बनाना कोई बड़ी बात नहीं थी क्योंकि जिसके घर में तुम अवतरित होती हो, उसे संसार की कौन सी वस्तु दुर्लभ हो सकती है ? ।।२८

स्वकीयौदार्यत्वादभिलषित - मोक्षादि - फलदा ,
त्वदङ्गस्यैवांशु रविरपि तमिस्रां प्रलयते ।
विभर्ता लोकानां हरिरपि ययाचे हि जनकम्,
अतस्त्वान्ते भक्तिर्बहु-फल-वती किन्न भवति ।।२९

हे जगदम्बिके ! तुम वरदान देने में इतनी उदार हो कि भक्त की छोटी-सी अभिलाषा से लेकर मोक्ष-पर्यन्त सब अभिलाषाओं को पूर्ण कर देती हो । तुम्हारे उपासक सूर्य-देव की एक किरण सारे अन्धकार को दूर कर देती है । लोकों के पालन करनेवाले भगवान् विष्णु को रामावतार में महा - राज जनक के पास तुम्हारे लिए याचना करनी पड़ी । अतः हे माता ! तुम्हारी भक्ति सदैव अनन्त फलों की देनेवाली है ।।२९

अधो नागेशस्त्वं क्षिति-पतिरपि त्वं सुर-पतिः,
यमस्त्वं पाशी त्वं विधिरसि हरिस्त्वं शिव इति ।

विभिन्नां त्वय्येवं विदधतु विधेयो गिरि-सुते !
प्रमाकारां वाणीं सकल-भुवन-त्राण-फलिताम् ।।३०

हे गिरि-राज-पुत्रि ! तुम्हारा भक्त सम्पूर्ण भुवनों की रक्षा करने में समर्थ तुम्हें अपनी यथार्थ-वाणी द्वारा कहता है कि पाताल में तुम शेष-नाग बनकर पृथ्वी को धारण करती हो, राजा के रूप में इस भूमि की पालन-कारिणी हो, स्वर्ग में तुम इन्द्र बनकर देवताओं की रक्षा करनेवाली हो; बहुत क्या कहूँ—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम-राज और वरुण—सब तुम्हारे ही रूप हैं अर्थात् तुम्हारे ही ये भिन्न रूप हैं, जो कार्य-बश बन गए हैं। अतएव कहा भी है—

यद्यद्धि दृश्यं खलु सैव दुर्गा, दुर्गा-स्वरूपादपरं न किञ्चित् ।।३०

भवानी सर्वेशा निगम-जननी सिन्धु-तनया,
शची दुर्गा वाणी सकल-भुवनोत्कृष्ट वपुषी।
भवोत्पत्तौ वीजा सकल-सुर-रूपा च विशदा,
तनीयांसी माता इति पद-विधां नौमि भवतीम् ।।३१

प्रथम पद्य में बताया कि सब देवता भगवती के ही रूप हैं। अब बताते हैं कि सब देवताओं की शक्तियाँ भी भगवती जगदम्बिका के ही रूप हैं—

सबके स्वामी (श्रेष्ठ) शिवजी की भवानी तुम्हीं हो, वेद-माता ब्रह्माणी (ब्रह्मा की पत्नी), सिन्धु-तनया लक्ष्मी (विष्णु-पत्नी), इन्द्राणी (इन्द्र-पत्नी), सरस्वती, सम्पूर्ण भुवनों में उत्कृष्ट रूप धारण करनेवाली, सृष्टि-निर्माण की बीज-रूपा, सर्व-देव-मयी बड़ी-से-बड़ी मूर्तिवाली, छोटी-से-छोटी शरीर-वाली तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ।।३१

त्वन्मौलि - वास - रवि - चन्द्र - कला-प्रफुल्लम्,
पुष्पं सरोवर - समे च मुखे मदीये।
भक्तिस्तवैव वरदे ! तव पाद - पद्मे,
आधादिदं भवतु भक्त - जनाश्रया सा ।।३२

हे वरदे बाला-त्रिपुर-सुन्दरि ! तुम्हारे मुकुट में स्थित सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से मेरे मुख-रूपी सरोवर में तुम्हारा स्तवन-रूपी कमल पुष्प सदैव खिला हुआ रहे अर्थात् दिन में सूर्य द्वारा कमल और रात में चन्द्रमा द्वारा कुमुद जैसे खिलता है, उसी प्रकार मेरे आनन में दिन-रात तुम्हारी स्तुति का कमल पुष्प खिलता रहे। भक्त-जनों को आश्रय देनेवाली तुम्हारे चरण-कमलों की भक्ति मेरे हृदय में सदा बनी रहे, जिसने कि इस स्तुति की रचना की है अर्थात् तुम्हारी भक्ति ने ही मुझे तुम्हारी स्तुति के लिए प्रेरित किया है ।।३२

।। श्रीकालिदास-सुत-दसमी-गर्भज-योगानन्द-कृतं बाला-त्रिपुर-सुन्दरी-महिम्न-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

* * *

श्रीकमला कल्पतरु

महिमा-मयी सर्वाभीष्ट-दात्री मां कमला की उपासना का विस्तृत विवरण जिज्ञासुओं को सुलभ कराने की दृष्टि से यह निबन्ध एवं स्तोत्र-संग्रह प्रकाशित किया गया है।

मूल्य १५-००

श्री गायत्री कल्पतरु

भगवती गायत्री के नाम से प्रायः सभी परिचित हैं परन्तु 'गायत्री' है क्या, इसे शिक्षित लोग भी नहीं जानते। इसमें 'गायत्री महा-शक्ति' पर प्रकाश डाला गया है।

मूल्य १५-०० रु०

श्रीबगला कल्पतरु

ब्रह्मास्त्र-विद्या श्रीबगलामुखी की उपासना का विषय बड़ा ही गम्भीर एवं रहस्य-मय है। उसे सर्व-प्रबोध बनाने के लिए इस पुस्तक द्वारा उत्तम प्रयास हुआ है।

मूल्य १५-०० रु०

श्रीदुर्गा कल्पतरु

भगवती दुर्गा की उपासना शाक्त-साधना का मूलाधार रही है। इस पुस्तक द्वारा भगवती दुर्गा की उपासना के विभिन्न पक्षों पर अनूठा साहित्य प्रस्तुत हुआ है।

मूल्य १५-०० रु०

रजि० सं० ३२९८१/५७ मई, १९९० रजि० सं० ए० डी० ९६

भगवती श्रीबाला

('बाबाश्री चरितामृत' मूल्य ३०-०० से संग्रहीत)

जयति वागीश्वरी जयति भुवनेश्वरी, जयति विश्वेश्वरी देवि बाले ।
जयति श्रीसुन्दरी, त्रिपुर-पुर-मालिके, विश्व-सञ्चालिके काल-काले ।।१
दश-मयी गुण-मयी त्रिगुण-गुण-जालिके, सालिके, तिमिर-नाशिनि तमाली ।
तार-सर-पार सर-सार सारिणि परा, पर-मयी एक तू देवि बाले ।।२
श्रीपरा-शक्ति शक्त्यङ्ग-गुण-धारिणी, अमल रवि-कोटि-सम काश-धारी ।
अस्ति अस्तित्व-पर मान-मख-मानिनी, देव-शिव सिद्धि सङ्काशि-शाले ।।३
रूप की भावना कौन वर्णन करे, शारदा शेष ब्रह्मा न विष्णु ।
है अलङ्कार जो दिव्य धारण किये, बीज-फुर भाव कमनीय-जाले ।।४
सर्व-वर्णन-रहित है सदा पूर्ण-पर, भक्त 'मोती' बने स्तवन-माला ।
है यही आचरज समझ में आव कस, गुण-गणातीतं धर एक-माले ।।५

पूज्य बाबाश्री की उपर्युक्त रचना से यह रहस्य उद्घाटित होता है कि भगवती श्रीबाला वागीश्वरी, भुवनेश्वरी, विश्वेश्वरी, श्री सुन्दरी, त्रिपुर-पुर-मालिका, विश्व-संचालिका हैं । दश-महाविद्या-मय हैं । गुण-मय हैं । त्रिगुणों के गुणों के जाल को फैलानेवाली एवं उससे तारनेवाली हैं । परा-शक्ति हैं । कोटि रवि के समान प्रकाशवाली हैं ।

स्व-अस्तित्व की रक्षा करनेवाली हैं । परा अस्तित्व का बोध करानेवाली हैं । सभी प्रकार की देव-सिद्धि को देनेवाली हैं ।

सर्व-वर्णन-रहित हैं । सदा पूर्णा हैं । गुण एवं गुणातीत को एक ही माला में पिरोनेवाली आश्चर्य-मयी शक्ति हैं ।

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद—६